संपर्क भाषा भारती

साहित्य-समाज को समर्पित राष्ट्रीय मासिकी, जून—2022, RNI-50756

सहयोग 60/-

अनुक्रमणिका जून—2022

क्रम सं:	शीर्षक :	लेखक :	पृष्ठ संख्या
1.	**संपादकीय**		**3**
2.	कविता	अशोक दर्द	4
3.	लघुकथाएं	भानु भारवि	4
4.	कहानी : धरती की दुर्गा	डॉ रामशंकर भारती	5-6
5.	कहानी : आखिर साजन जागे	दिलीप कुमार	7-8
6.	गीत	रेणु रंजन	8
7.	लघुकथाएं	इन्दु सिन्हा	9
8.	गंगा वंदना	डॉ शरद नारायण खरे	9
9.	कविता	राजेंद्र ओझा	9
10.	कविता	संजय वर्मा "दृष्टि"	10
11.	कविता	ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव	10
12.	कविता	यशपाल सिंह	10
13.	कविता	संजय कुमार सिंह	10
14.	कविता	अनुपमा अनुश्री	11
15.	कविता	सुबोध श्रीवास्तव	11
16.	नागार्जुन (आलेख)	कृष्ण कुमार यादव	12-14
17.	यूज़ एण्ड थ्रो	महेंद्र महर्षि	15-16
18.	पुस्तक विमोचन	राजेंद्र ओझा	16
19.	कविता	बाबा कल्पनेश	17
20.	लघुकथा	ज्योत्सना सिंह	17
21.	कविता	बाबा कल्पनेश	18
22.	कविता	लाल देवेंद्र कुमार श्रीवास्तव	18
23.	लघुकथा : बोझ	डॉ रमेश कटारिया पारस	19
24.	लघुकथा : बोझ	नीना सिन्हा	19
25.	कविता	केशव शरण	20
26.	कविता	बाबा कल्पनेश	20
27.	कविता	आलोक रंजन	20
28.	कहानी : फुलबा	रामानुज अनुज	21-24
29.	कविता	शिवानंद सिंह सहयोगी	25
30.	कविता	पुष्पा जोशी	25
31.	चार-पाये	प्रद्युम्न कुमार सिंह	26-27
32.	लोकगीत	तृप्ति मिश्रा	28
33.	गीत	मनीषा जोशी मनी	28
34.	कविता	ललित प्रताप सिंह	28
35.	लघुकथाएं	सिद्धेश्वर	29-30
36.	कहानी : अच्छा आदमी	दिलीप कुमार सिंह	31-35
37.	कविता	जया रावत	35
38.	लघुकथा : असर	अशोक जैन	36
39.	कविता	त्रिलोक सिंह ठकुरेला	36
40.	दोहे	आशा खात्री लता	36
41.	लघुकथा : दोषारोपण	ओमप्रकाश क्षत्रिय	37
42.	कविता	आलोक रंजन	37
43.	कविता	सूर्यादीप कुशवाहा	37
44.	कविता	अशोक दर्द	38
45.	कविता	रेणु रंजन	38
46.	कविता	डॉ शरद नारायण खरे	38

प्रिय समस्त पाठकगण,

संपर्क भाषा भारती का नवीनतम, जून 2022 का अंक आप सब के हाथों में सुपुर्द करते हुए अतीव प्रसन्नता हो रही है।

आप सब के उत्साहित सहयोग से पत्रिका नियमित रूप से प्रतिमाह प्रकाशित हो रही है। पत्रिका में गुणातीत अभि-वृद्धि भी हो रही है।

निरंतर नए पाठकों का जुड़ना व नए रचनाकारों का सहयोग इस बात को दर्शाता है कि साहित्य की प्यास बढ़ ही रही है, कम हरगिज़ नहीं हो रही है।

मैं नवोदित लेखकों-लेखिकाओं से विशेष तौर पर अनुरोध करूंगा कि वे बेहिचक लेखन करें। अब आप सब के पास सुविधा है, साधन है। हम सब के पास युवावस्था में मोबाइल फोन और कंप्यूटर , इंटरनेट, गूगल की सेवा-सुविधा उपलब्ध नहीं थी। लेख लिखते थे तो टाइपिस्ट ढूंढते थे। अब के समय में हिन्दी बहुत ही सरलता और सहजता से आप के पास है। ऐसे सुअवसर का लाभ उठाये। खूब लिखिए। आगे आपका ही भविष्य है।

आप पत्रिका से हर प्रकार से जुड़ेंगे तो हमें प्रसन्नता होगी।

यह अनुरोध मैंने गत अंक में भी किया था पत्रकारिता से सम्बद्ध/इच्छुक पाठकगण **https://www.newzlens.in** से भी जुड़ सकते हैं। यह पोर्टल भी समाचार/साहित्य को समर्पित है।

उत्सुक और उत्साही पत्रकार उपरोक्त पोर्टल के नियमित प्रतिनिधि भी बन कर अपने-अपने राज्य और जिलों से समाचार हमें भेज सकते हैं।

इस विषय में अतिरिक्त जानकारी केलिए आप मुझसे फोन पर भी बात कर सकते हैं।

पत्रिका से जुडने उसमें सहभागिता केलिए आपके सुझावों का हार्दिक स्वागत है। अप अपने विचारों से हमें अवश्य अवगत कराएं, हमारा ईमेल samparkbhashabharati@gmail.com है।

पत्रिका के साथ आपकी संबद्धता का अभिवादन है।

सादर,

सुधेन्दु ओझा

पत्रिका में प्रकाशित लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा। प्रकाशक तथा संपादक : सुधेन्दु ओझा, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली110092

अशोक दर्द

कलम लड़ेगी तलवारों से...

कलम लड़ेगी तलवारों से और झोंपड़ दरबारों से।

ठहरो , वक्त को आने तो दो फूल लड़ेंगे खारों से ॥

जिस दिन जनता समझ जाएगी इनके हर नारे का सच।

फिर न हासिल होगी सत्ता इनको झूठे नारों से ॥

खाली हाथ बेकारी वाले अपने रूप में आ गए तो।

दुम दबाकर भागेंगे ये सत्ता के गलियारों से॥

जिस दिन भूखे पेटों ने भी जो कर दी हड़तालें तो।

ये उतर के सड़क पे आ जाएंगे महंगी महंगी कारों से ॥

जन सेवा का नाटक करके लूट रहे जो जनता को।

इक दिन खुद घिर जाएंगे छल के इन किरदारों से ॥

शेरों की तासीर है इसकी जनता है यह जनता है।

भेड़ बनाकर मत हांकवाना यूं अपने हरकारों से॥

सोच रहे ये हक है अपना निर्धन फिरें उठाये जो।

इक दिन धोखा खा बैठेंगे सच मे इन्ही कहारों से ॥

सत्ता पाकर निर्धन का हक खाया तो फिर रखना याद।

रोज रोज फिर नहीं लदेंगे यूं फूलों के हारो से ॥

एक वतन में इंडिया भारत नहीं चलेगा नहीं चलेगा।

दर्द ये वंचित हो जाएंगे सदा के लिए नज़ारों से॥

लघुकथाएं:भानु भारवि

(एक)

पूछेगा कौन ?

चुनाव प्रचार के दौरान एक नेताजी अपनी पार्टी के चुनाव घोषणा पत्र की चीख-चीख कर दलील देते हुए देश से गरीबी हटाने का पुरजोर वादा कर रहे थे। वे अपने भाषण में गरीबी हटाने की बात दोहरा कर अपने पक्ष में वोट देने की अपील कर रहे थे। जनता के साथ एक अत्यन्त निर्धन व्यक्ति ने जब यह बात सुनी तो वह हाथ जोड़ कर नेताजी के समक्ष खड़ा हो गया और बोला, "नेताजी या क्या अन्याय करने जा रहे हैं आप ? एक निगोड़ी ग़रीबी ही तो है.....हमारी जीवनसंगिनी .....जिसे भी आप छीन लेना चाह रहे हैं। यह जब तक हमारे साथ है,.....तब तक कम से कम हमसे वोट मांगने..... तो आते तो रहोगे....! यह ग़रीबी ही तो है.....हमारे पास....एकमात्र हथियार....जो आपको हमारी तरफ़.... आकर्षित करती रही है....पिछले सत्तर सालों से! अगर आपने यों एक चुटकी में हमारी ग़रीबी मिटा दी तो हमें पूछेगा कौन ?"

(दो)

भूख की बीमारी

एक ग़रीब दुबला-पतला व्यक्ति डॉक्टर के पास जा कर बोला, "डॉक्टर सा'ब! मेरी तबीयत ठीक नहीं है, बहुत कमजोरी लगती है।" डॉक्टर ने मरीज की छाती, जीभ व आंख की जांच करने के बाद कहा कि "वैसे तो मुझे नहीं लगता कि तुम्हें कोई बीमारी है, थोड़ा-बहुत खाओगे-पिओगे तो यह कमजोरी भी मिट जाएगी।" मरीज बोला, "यही तो बीमारी है, सा'ब आखिर खाऊँ तो क्या खाऊँ....खाने को कुछ मिले जब न....ऊपर से ये पेट निगोड़ा.....जब देखो तब.... खाली का खाली.....और यह भूख भी है कि मिटती ही नहीं....आप तो बस मुझे भूख मिटाने दवाई दे दें ताकि, इस भूख का झंझट तो मिट जाए। जब भूख ही नहीं लगेगी तो यह खाने-पीने का झंझट अपने आप ही मिट जाएगा।"

(3)

जितने हाथ उतनी भीख

एक साहब के घर के दरवाजे पर भिखारी ने दस्तक दी और भीख मांगने लगा, "ए$$ बाबूजी ! ओ बाबूजी! दो दिन से भूखा हूँ, कुछ खाने को दे दो बाबूजी! ओ बाबूजी !" जब यही बात वह बार-बार दोहराता रहा तो साहब झल्ला उठे,"हट्टे-कट्टे हो कुछ कमाते क्यूँ नहीं...चले आते हैं....भीख मांगने! "दे दो बाबूजी$! बच्चे भी भूखे हैं" भिखारी ने मांगना जारी रखा तो साहेब चिल्ला पड़े, "जब बच्चों का पेट नहीं भर सकते तो पैदा ही क्यों किए ? साहेब के इस जवाब से आहत भिखारी बोल पड़ा, "आपको क्या पता बाबूजी भीख कितनी मेहनत से मिलती है और अकेला आदमी कितनी भीख मांग सकता है! ये तो भला हो ऊपर वाले का जो तीन बच्चे दे दिए.....कम से कम भीख मांगने को छह हाथ तो मिल गए।"

धरती की दुर्गा

कहानी

उस दिन भी दुर्गा काम पर नहीं आयी थी। उसके न आने से विद्यालय की साफ - सफाई भी ठीक से नहीं हो पायी थी। दूसरी अन्य व्यवस्थाएँ भी चरमराने के करीब थीं। खैर , जैसे - तैसे करके विद्यालय के अवकाश की घंटी टनटनाकर बजने का समय आ गया। घण्टी बजते ही कुछ ही देर में व्यवस्थानुसार छात्र - छात्राएँ अपने - अपने घर चले दिये। तभी रिक्शा से घर जाने वाली दूसरी कक्षा की छै वर्षीया तनु अपने हाथ में टाफियाँ लिए मेरे पास आयी और बहुत आत्मीयता व आदर भरे शब्दों में बोली ," प्रधानाचार्य जी ! ये मेरे जन्मदिन की टाफियाँ हैं आप आया दीदी को आज ही दे दीजिए कल तो रविवार है , सो मैं तो छुट्टी मनाऊँगी ....। " तनु ने चिहकते हुए टाफियाँ मेरी ओर बढ़ा दीं और हाथ जोड़कर नमस्ते करती हुई अपनी पालि के रिक्शाचालक धर्मेन्द्र के रिक्शा में बैठकर फुर्र से उड़कर अपने घर चली गयी। तनु के निर्दोष और मासूम बचपन की अठखेलियाँ देखकर मैं अपने बचपने के दिनों में लौट आया।

तब गाँव से कोस भर दूर पैदल लगभग नंगे पाँव ही अपने विद्यालय जाना होता था। पुराने कपड़े का मोटे सफेद डोरा से हाथ से सिला हुआ मटमैला थैला। लकड़ी की तख्ती , खड़िया, पाटी पोतने वाला बोरका तथा बैठने के लिए एक बोरा लेकर विद्यालय जाना पड़ता था। देर से पहुँचने पर बस्ती वाले मुंशी जी कान पकड़कर मैदान में भागकर चार चक्कर लगाने की सजा देते थे। फिर पीपल के नीचे बने ऊँचे चबूतरे पर खड़े होकर जोर - जोर से चालीस तक पहाड़ों की वचनी करवाते। इण्टरबल तक गणित की खूब पढ़ाई होती और ठीक तरह से सवाल न सीखने पर जमकर ठुकाई भी होती। भोजनावकाश में दूसरे गाँवों से आनेवाले बच्चे अपने साथ लायीं रोटियाँ चटनी और अचार से खाते। कुँए से बाल्टी भर पानी निकाल कर पहले गुरुजी को लोटा से पिलाने जाते फिर खुद पीते। सभी अध्यापक हैडमास्टर साहब के कमरे में इकट्ठे बैठते। जैसे ही इण्टरबल समाप्त होने की घण्टी बजती वे छात्रों को पढ़ाने लगते। मुझे अच्छी तरह याद है तब के सरकारी स्कूल में पढ़े हुए अधिकाँश छात्र सरकारी नौकरियों में चले जाते थे। मैं बचपन के झूलों पर झूले जा रहा था। तभी विद्यालय के चौकीदार ओमप्रकाश ने सामने आकर पूँछा , " साब ! क्या दफ्तर बंद कर दूँ ..? "

मैं अपने अतीत से लौटकर आज के वर्तमान में आ गया। ओमप्रकाश चाबियों का गुच्छा लिए खड़ा हुआ था। मेरे सहमति में सर हिलाते ही वह कार्यालय बंद करने लगा।

शाम होने को थी। सूरज लाल गेंद - सा लुढ़कता हुआ दूर कहीं पेडों के झुरमुटों में छुपने जा रहा था। जाड़े के सर्द दिन थे। मैं तनु की दी हुईं टाफियाँ लेकर विद्यालय की आया दुर्गावती का हाल जानने के लिए उसके किराये के घर की ओर चल पड़ा। धीरे - धीरे अंधेरा घना होता जा रहा था और सर्दी भी बढ़ने लगी थी। किंतु छोटी बालिका तनु का आग्रह भरा चेहरा मेरी आँखों के आगे घूम रहा था। उसका आया के प्रति आदर भाव ने मेरे भीतर बैठे प्रशासक को नत मस्तक कर दिया था।आया दुर्गावती का बिना सूचना दिए दो दिन विद्यालय में अनुपस्थित रहने के कारण से उपजा आक्रोश भी कुछ ठंडा पड़ गया था। फिरभी मैं आया की इस लापरवाही व अनुशासनहीनता को भूल नहीं पा रहा था। इसी उधेड़बुन में चलते - चलते मैं शहर के किनारे बसी कंजरों की बस्ती में प्रवेश कर चुका था। जहाँ संभ्रातजन दिन में भी जाने से कतराते थे। मगर मैं वहाँ जा रहा था। कंजर बस्ती के वहीं पास में नगर पंचायत के दो रिहायसी कमरों में दुर्गा रहती थी। हम - सब उसे दुर्गावती के आधे नाम दुर्गा कहकर ही उसे बुलाते थे। कंजर बस्ती की तंगगली के आखिरी सिरे पर जर्जर बिजली पोल के पास क्षतिग्रस्त करार दिये गये नगर पंचायत के कमरे ही उसका स्थायी घर था। जिसे देबीपुरा के जमींदार और टाउन एरिया के चेयरमैन ने दुर्गा की श्रमसेवा और गरीबी को देखकर अस्थाई रूप से रहने को दे दिये थे। यों तो दो कोस की दूरी पर ही दुर्गा का गाँव सहाल था। जहां ँ उसका मानसिक रोगी पति , जुआरी जवान बेटा और वृद्धा सास रहती थी। दुर्गा ने पति की बीमारी या बेटे के नकारापन के कारण गाँव - घर नहीं छोड़ा था बल्कि घर की गरीबी , बूढ़ी सास तथा पति की बीमारी के निदान के लिए घरवार छोड़कर कस्बे में आ गयी थी। स्कूल में काम के अलावा वह सुबह - शाम चार - पाँच बड़े घरों में झाड़ू - पौंछा करने व बर्तन माँजने भी जाती थी। सूरज निकलने में भले ही अंजा करदे लेकिन दुर्गा बिना अंजा किए अपने काम की शुरूआत बड़े तड़के ही कर देती थी जो देर रात तक चलते रहते। इन कामों के बदले मिले दामों से वह अपने घरवालों का भरणपोषण कर रही थी।

मेरे दुर्गा के दरवाजे पर पहुँचते ही मरियल - सी रोशनी वाली पोस्टलैंप गुल हो गयी। काली चादर - सा घना अँधेरा मेरे चारों ओर पसर गया। वो तो गनीमत रही यदि पहले बिजली चली जाती तो उस तरफ जाना निरापद नहीं था। पंचायत घर के खण्डहरों में अक्सर जुए के अड्डे चलते थे व कच्ची शराब की भी अवैध बिक्री होती थी। वो तो मैं ठीठ और निडर स्वभाव का होने के कारण यहाँ चला आया था। दुर्गा के दरवाजे पर पहुँचकर मैंने जोर से उसे आवाज लगायी , फिर कुंड्डी बजायी। प्रतिउत्तर की कुछ देर प्रतीक्षा की। कोई जवाब न मिलने पर मैंने दोबारा उसका नाम दुर्गा ! दुर्गा !! लेकर बड़ी जोर से पुकारा। थोडी ही देर मे भीतर से उसकी कराहती हुई - सी आवाज आयी - आयी ! " जी,आयी !!..।." चर्र से उसके कमरे का दरवाजा खुला।

दुर्गा कथरी ओढ़े , हाथ जोड़े , सर झुकाये

अपराधी की तरह मेरे सामने आकर खड़ी होगयी। मैं कुछ कह पाता उससे पहले ही वह बोल पड़ी , " भाई साब ! दो दिना सें भौतंइ बुखार चढ़ौ है। आँग जल रह्यो है। ठाड़े होवे में गोड़े टूटत हैं। रिक्शावाले धर्मेंद्र भैयाजी से आपकौं खबर भिजवायी थी। बैदजी की दवाई खायी है ,अब रात सें आराम परौ है।"दुर्गा एक ही साँस में अपना पक्ष रख चुकी थी। मैंने उसे तसल्ली भरे शब्दों में कहा , " कोई बात नहीं , चलो जल्दी ठीक हो जाओ। तुम्हारी कोई खबर नहीं मिली सो पता करने चला आया था। दूसरा एक काम और है , तुम्हारी लड़ैती तनु ने अपने जन्मदिन की टाफियाँ तुम्हारे लिए दीं थी सो उन्हें भी तुम्हें देना था। " तनु का नाम सुनते ही दुर्गा के चेहरे पर बिजली - सी चमकती खुशी दौड़ गयी। मानो दो दिन से चढ़ा हुआ बुखार उतर गया हो। एक महिला का मातृत्व उसकी आँखों में उतर आया था। जैसे ही मैंने टाफियाँ उसे दीं , उसने बड़े आदर से उन्हें लेकर माथे पर लगाया और फिर अपनी मटमैली साड़ी के पल्लू में बाँध लीं....। अब मैं चलता हूँ ..। मेरा ऐसा कहना सुनते ही दुर्गा हाथ जोड़कर बोली , ..साब ! आप भौत देर सें ठंड खा रहे हैं, अंदर आजयौ बरोसी जल रही है, थोड़ी आँच ले लो फिर चले जइयो। दुर्गा के नेह आमंत्रण को मैं ठुकरा नहीं पाया और उसके कमरे में भीतर बिछी खाट पर आकार बैठने लगा। दुर्गा ने जल्दी - जल्दी खटिया से अपने बिस्तर समैट कर एक तरफ सरका दिए और अलगनी पर टँगे अपने धुले हुए शाल को बिछाकर मुझे उस पर बैठने का आग्रह किया। पुराना कमरा सफेद चूने से पुता हुआ साफ - सुथरा था। दीवार की अलमारी में खाने - पीने का कुछ सामान दिखाई दे रहा था। दीवार पर एक बहुत बड़ा पोस्टर माँ दुर्गा का लगा हुआ था। मेरे बैठते ही दुर्गा चाय बनाने लगी। मेरी बहुत रोकने पर पर भी वह नहीं मानी और एक तरह से जिद करती हुई बोली , " आप कबै - कबै आत। ना हम बीमार होते ना आप आते। हमाए बड़े भाग जो आप जैसे साब हमें मिले। जो नौकर - चाकरन की खबरअतर लैन खुदई चले आउत। " दुर्गा मेरी तारीफ किए चली जा रही थी। मैंने कहा कोई बात नहीं यह सब चलता रहता है। तुम जल्दी ठीक हो जाओ। सोमवार से विद्यालय आना है। कुछ देर में ही उसने चीनी की प्लेट और पुराने जमाने के कप में सकुचाते हुए चाय मुझे दे दी। साब कछु खाबे कौं नंइया। " मैंने उसे तसल्ली देते हुए कहा मैं कुछ नहीं खाऊँगा। तुम्हारी चाय ही बहुत है। उसने अपने लिए चाय स्टील के गिलास में लेली थी और मेरे सामने जमीन पर ही पुरानी कथरी ओढ़कर बैठ गयी। मैं चाय के घूँट लेते हुए सोच रहा था - गरीब स्त्रियों को लेकर समाज में अनेक प्रकार की गलत धारणाएँ पता नहीं लोगों ने क्यों फैला रखीं हैं। इन पर चरित्रहीन होने के आरोप अक्सर लगाए जाते रहते हैं। मैं दुर्गा के स्त्री चरित्र की विशेषता को लेकर गए सामंतवादियों को सोच को दरकिनार करते हुए उसके पवित्र सेवाभाव को मन ही मन सराह रहा था। दुर्गा की चाय में जो अपनत्व का स्वाद था वह किसी भी अच्छी से अच्छी चाय से कम नहीं था। मेरी चाय समाप्त हो चुकी थी। किंतु विचारधारा बहे चली जा रही थी...समाज मैं औरत को लेकर जिस तरह के किस्से - कहानियाँ गढ़ीं जातीं हैं। जिस प्रकार के बितंडावाद तैयार किए जाते हैं। जिस प्रकार की एक काली अँधेरी धुंध की चादर जबरन उसके चरित्र को दाग- दाग करने को डाली जाती है।उसकी मजबूरियों का नाजायज़ फयदे लिए जाते हैं।अनेक तरह से उसका शोषण होता है। तब यह विश्वास होने लगता है कि स्त्री को पुरुषाधीन बनाने रखने के लिए यह पितृसत्तात्मक समाज की सोची समझी चाल है। स्त्री को केवल एक जिंस की तरह उपभोग करनेवाली पुरुषों की मानसिकता ने उसके विकास के सारे रास्ते बंद कर दिए हैं। आज विद्यालय में सरस्वती पूजा थी। हवन - पूजन और प्रसाद वितरण के उपरांत सभी अपने - अपने घर जा चुके थे। दुर्गा कमरों की साफ सफाई करने हवन- पूजन में उपयोग में लाए गए बर्तनों को साफ कर रही थी। कुछ ही देर में सभी अपना काम निपटा चुके थे। अब केवल चौकीदार ओमप्रकाश और छात्र छात्राओं को रिक्शे ले जाने वाले कुछ रिक्शेवाले ही जाने को बचे थे जो आपस में बतिया रहे थे। तभी दुर्गा ने आकर मुझसे जाने की अनुमति माँगी , साब! आज जल्दी जाना है ...

मेरे ' जाओ ' कहने पर वह मुझे नमस्ते करके चली गयी।

तनु पिछले दो सप्ताह से विद्यालय नहीं आ रही थी। शाम को मैं तनु की अनुपस्थिति कारण पता करने उसके घर जा पहुँचा। घर जाकर देखा चिड़िया - सी चहकनेवाली तनु बिस्तर पर आँखें बंद किए लेटी थी। पास में ही उसकी लकवाग्रस्त बीमार माँ बैठी थी। मैंने तनु के माथे पर हाँथ रखा तो उसने आँखें खोलदीं और उठने लगी। मेरे मना करने पर वह लेटी रही। उसकी माँ ने मुझे बताया , प्रधानाचार्य जी ! तनु को शीतला माता निकली थीं। दो दिन पहले उसारौ ले गयीं हैं। अब फफोले भी सूख रहे हैं और बुखार भी ठीक है। मैं तो अकेली थी सो घबरा गयी थी। वो तो भला हो आपके स्कूल की आया दुर्गा का जो उसने इसकी माँ बन कर सेवा की है। जिसके कारण तनु की जा बच गयी है।मेरी असाध्य बीमारी को देखकर ही दुर्गा नौ दिन रोज सबेरे - सबेरे इतनी ठंड में सपरखोरकर बड़ीमाता के मंदिर पर जल चढ़ाने जाती रही और रात में हमारे यहाँ इतने दिन धरती पर सोती रही ....। मैं यह सब जान कर अचंभित होने के साथ ही अपने प्रशासकीय दंभ से भी मुक्त होता जा रहा था। दुर्गा को छोटी - मोटी गल्तियों के लिए डाटने पर दुर्गा का सिर झुकाकर खड़े रहने के चित्र मेरी आँखों के सामने नाच रहे थे। मैं अपराध बोध से भीतर ही भीतर गढ़ा जा रहा था।

मेरी और समाज की नजर में जो सिर्फ एक कामवाली बाई है। गाँव की अनपढ़ मजदूरिन है। उसका ऐसा समर्पण भाव मानवीरूपधारी धरती की दुर्गा की तरह मेरी आँखों में अविराम घूमे जा रहा था .....।

डा.रामशंकर भारती ए-128/1, दीनदयाल नगर, झाँसी-284003, -9696520940

दीपक कुमार

आखिर साजन जागे

मुंशीजी- यह शब्द उनके साथ ऐसे चिपका कि गाँव वाले उनका नाम तक भूल गये। आलम ये है कि वे यदा-कदा खुद अपना नाम भूल जाते हैं। बहरहाल मित्र, रिश्तेदार, समाज सब उनको मुंशीजी के नाम से ही जानते हैं। साहब रेल में नौकरी करते हैं, ओहदा क्या है, किसी को मालूम नहीं, परंतु कहते सब स्टेशन मास्टर ही हैं।

एकबार साहब चिलचिलाती धूप में बैग लिये चले जा रहे थे कि एक ग्रामीण ने टोका- परनाम मुंशीजी! कब आए?

मुंशी जी ने क्षुब्ध होकर कहा- क्या? मैं तो दो महीने की छुट्टी काटकर आज वापस जा रहा हूँ काम पर।

बेचारा सीधा-सादा ग्रामीण हैरान-परेशान! मुंशीजी दो महीने से गाँव में छुट्टी पर थे और उसे मालूम तक नहीं।

दोष उसका भी नहीं। मुंशीजी की जीवनशैली ही ऐसी है। जिस दिन आते हैं, लोग देखते हैं और जब जाते हैं तब कोई देखता है तो देख ले वरना उनकी दुनिया अमोघ की माँ से शुरू होती है और अमोघ की माँ पर ही जाकर खत्म हो जाती है।

प्रभावती देवी यानी अमोघ की माँ! पति को कैसे हैंडल करना है, कोई उससे सीखे। क्या मजाल कि उससे पूछे बिना मुंशीजी एक चाय तक पी लें।

एक दिन मुंशीजी बाजार में मिल गये। यह मेरे लिए आठवें अजूबा से कम नहीं था। पता नहीं कैसे और किन हालातों में मुंशीजी को परमिशन मिली होगी बाजार तक आने की।

मैंने पूछा- चाय?

वे बोले- नहीं, मैं पी चुका हूँ। दिन में दो चाय से अधिक हुई तो अमोघ की माँ जीने नहीं देगी?

मैंने पूछा- पान?

वे बोले- पिटवाने का इरादा है क्या? अमोघ की माँ ने लाल मुँह देखा नहीं कि सच में मार-मार कर लाल कर देगी।

मैने कहा- उफफफफ! इतनी बंदिश, अच्छा चलिए, रेलवे से बहुत कमाए है, चलिए आज कुछ बीयर-सीयर हो जाए।

मुंशीजी घबराए- बाप रे बाप..... आज तो तुम मुझे मरवा कर छोड़ेगे। अमोघ की माँ मेरे साथ-साथ तुमको भी धो देगी।

तब मैंने पहली बार सोचा कि सबकुछ अमोघ की माँ यानी कि प्रभावती देवी ही डील करती है तो ये आदमी जी क्यों रहा है? इसे इस दुनिया का हिस्सा होने का कोई हक नहीं। मुंशीजी के जिम्मे एक ही काम है- कमाना। उसे कहाँ और कैसे खर्च करना है, उनकी पत्नी प्रभावती देवी तय करती है। बेटों की शादी कब तय हो गई, कितनी दहेज मिली, इससे मुंशी जी को क्या, उन्हें तो एक रिश्तेदार की तरह आना है और ब्याह अटेंड करके काम पर लौट जाना है। बेटियों के लिए लडका ढूंढना हो, दहेज की बात करनी हो, शादी का दिन रखना हो, सब उनकी औरत के जिम्मे। मुंशीजी कहते भी हैं - पूर्व जन्म में कुछ पुण्य ही किया होगा कि अमोघ की माँ जैसी पत्नी मिली। बेचारी सब संभाल लेती है। मुझे तो बस नौकरी करने से मतलब है। लेकिन नौकरी तो हमेशा रहने वाली थी नहीं। उम्र पूरी हुई और साहब आखिरकार रिटायर्ड होकर गाँव आ गये। महीना दो महीना तक तो मुंशीजी घर में पत्नी के आंचल तले ही दुबके रहे! कभी चाय कभी समोसा तो कभी चप खा-खाकर मोटा भी गये ! यदाकदा कोई मिलने आ भी जाता तो अंदर से साहब खुद ही आवाज बदल कर बोल देते- मुंशीजी घर पर नहीं है।

मुझे तो सच में हैरानी होती है कि कोई आदमी इस कदर अपनी पत्नी के आकर्षण में बंध के कैसे रह सकता है कि स्वयं का अस्तित्त्व ही भूल जाए तो कभी-कभी उनसे प्रेरणा भी मिलती है और मुख से अनायास ही निकल जाता है- साजन हो तो ऐसा!

उनसे प्रभावित होकर कई बार मैंने भी अपनी धर्मपत्नी से टूटकर प्रेम करने का प्रयास किया परंतु विफल रहा! हर बार मेरे प्रेम को उसने मजाक में उडा़ दिया ! मैं समझ गया था कि न मैं मुंशी बन सकता हूं न मेरी पत्नी प्रभावती देवी की जगह ले सकती है। बहरहाल, साहब में आजकल छोटे ही सही पर बदलाव नजर आने लगे हैं। रिटायरमेन्ट अपने आप में एक बिमारी होती है, वो भी उसकी चपेट में आने लगे। कभी-कभार घर के बाहर चबूतरे पर बैठना आरंभ किये। आने जाने वाले लोगों से हाल-चाल भी होने लगा। इसतरह गांववालों को मालूम हुआ कि मुंशीजी की सेवानिवृत्ति हो चुकी है। एक दिन तो हद ही हो गया, साहब कुदाल लेकर खेतों की ओर चल पडे। रास्ते में कुछ लडकों ने चिढाया भी- अब खेती होगी क्या?

तब कभी मुंह न खोलने वाले मुंशीजी ने उन्हें असंख्य गालियों का आशीर्वचन भी दिया। गांव में गाली सुनकर मजे लेने वालों की एक जमात होती है। तरह-तरह के हथकंडे अपना कर वो सामने वाले को तंग करते हैं और उसकी गालियों में परमानंद की अनुभूति करते हैं। कुछ दिनों तक मुंशीजी उन लड़को का शिकार रहे। घर के बाहर कदम रखना शुरू ही किया था कि मनचलों ने हौसला पस्त कर दिया था। मनचलों के मुंह से यदा-कदा ये भी सुनने क़ो मिल जाता था- लगता है मैडम का प्रोग्राम दिन में भी चालू हो गया है, तभी तो मुंशीजी घर से बाहर हैं। अब इब प्रोग्राम का मतलब क्या था, मुंशी जी मन ही मन समझने की कोशिश तो करते थे लेकिन अपनी पत्नी प्रभावती से पूछने की हिम्मत नहीं होती थी। कहीं बेलन-वेलन चला दे तो कौन बुढापे में हड्डी का दर्द लेकर जिएगा।

मुंशीजी की एक बेटी अभी कुंवारी थी। उसके लिए लड़का ढूंढा जा रहा था। इधर घर में आजकल रमेसर का आना-जाना शुरू हुआ था। कहां कब कोई लड़का देखा गया, लड़के की योग्यता क्या है, उसका घर द्वार कैसा है, ये सारी बातें प्रभावती और रमेसरा के बीच में होती थी। मुंशीजी की राय कोई मायने नहीं रखती थी। उन्हें तो सिर्फ दहेज के पैसे देने थे। मुंशीजी महान तो थे लेकिन इतने भी नहीं कि उनको बुरा न लगता हो लेकिन कुछ भी उखाड पाने की स्थिति में नहीं थे। पत्नी के सामने जाते ही गाय हो जाते थे और पुचकार कर कह देती

थी- "बडा भाग्य मेरा कि आप जैसा पति मिला। आप तो देवता हैं।"
और साहब लौट जाते थे क्योंकि देवता निर्विकार होते हैं।
आजकल रमेसर के अलावा दो- चार और लोगों ने भी आना शुरू कर दिया था। बाहर की कोठरी में वे सब दिन-दिन भर ताश खेलने लगे थे और बीच-बीच में प्रभावती अंदर से उनके लिए चाय-पानी भी भिजवाने लगी थी।
एक दिन मुंशीजी से रहा नहीं गया तो ताश मंडली पर भड़क गये- "मेरे घर को धर्मशाला समझ रखा है क्या? अभी के अभी बंद करो ये सब नहीं तो थाने में कम्पलेन करूंगा।"
ताश खेलने वाले हैरान थे। मुंशीजी गुस्सा भी करते हैं, उन्हें मालूम नहीं था। हो-हल्ला सुनकर प्रभावती बाहर आई और पति पर ही बरस पड़ी - "आप तो जीवन भर बाहर रहे, गांव में सबसे बनाकर नहीं रखती तो घर-द्वार, खेती-बाड़ी, बेटा-बेटी की शादी, कुछ भी नहीं हो पाता। आपको समाज में उठना-बैठना नहीं आता तो पड़े रहिए न कमरे में। मुझ-पर छोड़ दीजिए सब, समझे।"
मुंशीजी कुछ कहना चाह ही रहे थे कि अंदर से लूंगी बांधते हुए रमेसर निकला- क्या हुआ भौजी?
रमेसर को देखकर मुंशीजी गुस्से से कांपने लगे, मुंह से कुछ बोले नहीं लेकिन हाथ पैर बुरी तरह कांप रहे थे- "लगता है इस घर का मालिक रमेसर ही है, मैं नहीं।"
उस शाम मुंशीजी अपनी छड़ी लेकर गांव में निकले तो दस बजे रात को लौटे। पत्नी ने पूछा- कहां थे अबतक तो जवाब मिला- जहन्नुम में।
अगले दिन भी वही हुआ और उसके अगले दिन भी और धीरे-धीरे यह मुंशीजी का रूटिन ही बन गया। शाम को निकलना और देर रात तक लौटना।
फिर कई दिनों तक मुंशीजी की मैंने खबर नहीं ली। मैं भी अपने काम में व्यस्त था, उधर रूख करने का मौका नहीं मिला। एक शाम बाजार से लौट रहा था तो खिड़की से प्रभावती देवी ने आवाज दी- "बाबू घर में आइए, कुछ जरूरी काम है।"
बाहर की कोठरी में अब भी चार लोग ताश खेल रहे थे। मैं सीधे आंगन में गया, वहां मुंशीजी चारपाई पर लेटे थे। उनकी पत्नी बोली- "देखिए बाबू, बुढ़ापे में इनका चाल-चलन। रोज सांझ को निकलते हैं और देर रात उधर से दारू पीकर लौटते हैं।"
मेरी हैरानी का ठिकाना न था। मुंशीजी और दारू....नहीं, नहीं ये नहीं हो सकता। तभी प्रभावती ने उनका तकिया सरकाया- देखिए.....तकिया के नीचे सिगरेट का एक पैकेट था और दारू की दो तीन छोटी-छोटी खाली शीशियां पड़ी थी।
उनकी पत्नी बोले जा रही थी- " इनसे कहिए सुधर जाएं वरना सुधारना मुझे आता है और आजकल ये पेंशन भी उठाकर मुझे नहीं देते, अपने पास रखते हैं गुलछरे उड़ाने के लिए।"
मैने मुशीजी से कहा- "ये क्या सुन रहा हूं, आप ये सब करने लगे, आपका तो एक आदर्श पति कहलाते थे।"
मुंशीजी भड़क गये- " बाबू तुम इसे नहीं जानते लेकिन अब मैं इसके तिरिया चरितर क़ो समझ गया हूं। जीवन बीत गई इसकी गुलामी करते-करते, मगर अब नहीं, अब एक पैसा इसके हाथ नहीं लगने दूंगा और मेरा जो मन होगा, वो करूंगा।"
प्रभावती गुस्से में बोली- " अभी बेटी की शादी बाकी है, तुम सुधरोगे या कुछ चाहते हो?"
इस बात पर तो मानों मुंशीजी की हड्डियों में जवानी का करंट आ गया, एक झटके में चारपाई से उठे और छड़ी तान कर चिल्लाए- " चुप एकदम चुप वरना सिर फोड़ दूंगा।"
शोर सुनकर रमेसर अंदर आया, उसके साथ वो ताश के खिलाड़ी भी थे। उन्हें देखते ही मुंशीजी का क्रोध सातवें आसमान पर पहुंच गया। अभिमन्यु की तरह चक्रव्यूह में दनादन छड़ी चलाने- साले तुमलोगों ने मेरे घर को कोठा ही समझ लिया है। आज फैसला हो ही जाए।
दो-चार छड़ी लगते ही दुश्मन मैदान छोड़कर भाग चुके थे। प्रभावती देवी कोने में दुबकी तूफान के थमने का इंतजार कर रही थी। मुंशीजी को पानी पिलाकर ठंडा किया और बाहर निकला तो देखा दरवाजे पर बड़ी भीड़ थी। लोगों ने पूछना शुरू किया- "क्या हुआ, क्या हुआ?"
मैंने कहा- कुछ नहीं भाई, अपने-अपने घर जाओ....कुछ नहीं हुआ, बस इतना समझ लो कि चोर-उच्चके दुम दबाकर भागे, आखिर साजन जागे।
****

दीपक कुमार

रेणु रंजन

आसान नहीं होता

अपनी हस्ती में जीते हैं, करके जीवन प्रश्न सरल।
आसान नहीं होता यह सब करना पड़ता यत्न अटल।।

इधरउधर भटकता रहता, जाने कहां मंज़िल होगा।
अगरमगर में वक्त बीते, अब क्या यहां हासिल होगा।।
मुस्कान चेहरे पर आता, मिल जाता जब मन का हल।
आसान नहीं होता यह सब, करना पड़ता यत्न अटल।।

खुशियाँ जगत में पाने को, तन स्वेद बहते रहते हैं।
जब साथ मिटता जाता है, मन भेद करते रहते है।।
जिनमें होती है खुद्दारी, बढ़ता जाता छोड़ महल।
आसान नहीं होता यह सब, करना पड़ता यत्न अटल।।

खिलते चेहरे के पीछे, दर्द दिल का छुप जाता है।
क्षणिक सुख-दुख आता रहता, मुरझाया अधर दिख जाता है।।
तपा न जिंदगी की आंच में, क्या जाने क्या चीज़ असल।
आसान नहीं होता यह सब, करना पड़ता यत्न अटल।।

पता नहीं भविष्य गर्भ में, कितना सारा छुपा होगा।
करने को उद्धार अपना, कोशिशों में डूबा होगा।।
कितने होंगे दुनिया में जो, देखा होगा अपना कल।
आसान नहीं होता यह सब, करना पड़ता यत्न अटल।।

इन्दु सिन्हा की दो लघुकथाएं

"सास"

मेरी शादी को लगभग वर्ष पर हो रहा था मां का अपनी बहू से प्रेम था कि कम ही नहीं हो रहा था | मैंने एक दिन दफ्तर से आकर माँ से पूछा कि मैं यह सब क्या है ?तुम बहू से घर के हल्के-फुल्के ही काम करवाती हो | अच्छे से काम करवाओ |

माँ बोली , बेटा, मायके में अक्सर कहते हैं कि बेटी तो मेहमान है उसे पराए घर जाना है, वह तो पराई है |यदि बेटी वाले उसे परायी समझते हैं तो उसे ससुराल वालों को अपना समझना होगा | और यदि ससुराल में भी उसे परायापन मिलेगा तो कहाँ जाएगी बेटी ?

मैं सोचता रह गया कि अधिकांश सासों का दृष्टिकोण ये हो तो हर घर स्वर्ग बन जाए |

"पर्दे के पीछे"

अरे भाई , इसमें हम क्या करें ? प्रधानमंत्री मोदी जी ने सब को घर देने का वादा किया है, तुम गरीबो को तो हम रुपए क्यों उधार दे ?जिसने घर देने का वादा किया है रुपये भी उनसे ही लो | मि जैन उनकी पत्नी अपने शोरूम में काम करने वाले वर्कर पर गुस्से से चिल्ला रहे थे | तुम काम छोडकर भाग गए तो ? कहाँ तलाशता रहूँगा ?

वर्कर ने तीस हजार उधार मांगें थे और हर माह वेतन से काटने के लिये कहा था |

मैं वहाँ मिक्सर खरीदने आया था | उनका पुराना कस्टमर था |

शहर के नामी गिरामी और इलेक्ट्रानिक सामान के कई शोरूम के मालिक के घर के पर्दे के पीछे का बदसूरत सच था जो नकली खूबसूरत पर्दे के पीछे छिपा था |

गंगा-वंदना

गंगा मइया तुम हो पावन,तुम तो हो सबकी मनभावन।
तुम हर लेतीं सबके दुख को,देतीं हो फिर सबको सुख को।।

गंगा मइया पापहारिणी,सचमुच में हो दु:खहारिणी।
मोक्ष प्रदायक,मंगलकारी,गंगा मइया तुम हितकारी।।

शिवजी-केशों से उद्भूता,गंगा माँ से सब अभिभूता।
नीर तुम्हारा पावन निर्मल,सदियों से जो करता कल-कल।।

तप जब भागीरथ ने कीन्हा,गंगे ने उनको वर दीन्हा।
स्वर्गलोक से दौडी आईं,वेग प्रखर लेकर के धाईं।।

निज पुरखों को मोक्ष दिलाया,भागीरथ ने तो फल पाया।
भारतभूमि बनी पावनतम,मिटा धरा का सारा मातम।।

गंगाजी अँधियार मिटातीं,गहन तिमिर सारा पी जातीं।
सबकी पूज्य,सभी को भातीं,जनम-जनम के शाप मिटातीं।।

दया करो हे ! गंगे माता,जग से मेरा जी घबराता।
तुम कर दो उपकार सुहावन,जीवन मेरा हो मनभावन।।

जमुना के सँग संगम करतीं,तीरथ में सबके दुख हरतीं।
गंगा मइया तुम अविनाशी,तुमसे ही पावन है काशी।।

बहे तुम्हारी अविरल धारा,रूप लगे है बेहद प्यारा।
नीर तुम्हारा सबसे न्यारा,अमरत भी उस पर है वारा।।

गंगा माँ सब पर उपकारी,करते आज सभी जयकारी।।
सकल देव भी हैं बलिहारी,आशीषें देते त्रिपुरारी।।

गंगा-नीर बहुत उपयोगी,करे आचमन हर नर,योगी।
संत होय या होवे भोगी,स्वस्थ रहे या होवे रोगी।।

प्रो (डॉ) शरद नारायण खरे

बुलडोजर

उसका दिखना
इन दिनों
दहशत का दिखना है।

उसकी
अपनी ताकत तो है ही
पास उसके
उसके पास
आकाओं की भी ताकत है।

हम जानते हैं
लेकिन
मानते नहीं है
इसीलिए करते रहते हैं हम
अनुनय
विनय
गिड़गिड़ाते रहते हैं हम।

हम भूल जाते हैं
यह वो चक्र है
जो कभी
खाली नहीं लौटता।

राजेन्द्र ओझा,
रायपुर, छत्तीसगढ

जल की पाती

जल कहता
इंसान व्यर्थ क्यों ढोलता मुझे
प्यास लगने पर तभी तो
खोजने लगता है मुझे।

बादलों से छनकर मै
जब बरस जाता
सहेजना ना जानता
इंसान इसलिए तरस जाता।

ये माहौल देख के
नदियाँ रुदन करने लगती
उसका पानी आँसुओं के रूप में
इंसानों की आंखों में भरने लगी।

कैसे कहे मुझे व्यर्थ न बहाओ
जल ही जीवन है
ये बातें इंसानो को कहाँ से
समझाओ।

अब इंसानो करना
इतनी मेहरबानी
जल सेवा कर
बन जाना तुम दानी।

संजय वर्मा "दृष्टि"

लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा। प्रकाशक तथा संपादक : सुधेन्दु ओझा, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली110092

पहले वाली बात कहां।

वक्त का पहिया ऐसा घूमा पहले वाली बात कहां।
कागज के हों नाव तैरते ऐसी अब बरसात कहां।

साथ वक्त के रंग है बदला बदल गया माहौल यहां
शहरों का आवरण लिये अब गाव तो है देहात कहां।

फंसा दिया है राजनीति ने जाति धर्म के चक्कर मे
मिलकर हर त्योहार मनाएं ऐसे अब ख्यालात कहां।

हर कोई मशरूफ यहां है अपने अपने उलझन मे
चौंसठ खाने बिछे हुए हों वो शह और वो मात कहां।

जैसे झुण्ड कोई तारों का गिरकर अटका पेड़ों पर
जुगनू चमक रहे बागों मे इतनी सुन्दर रात कहां।

(ब्रजेश श्रीवास्तव)

यशपाल सिंह

दिल कहेगा कि सियासत लिखना
फर्ज ये है कि मुहब्बत लिखना

मुहब्बत लिख अगर नहीं सकते
कम से कम आप हकीकत लिखना

सच अगर है नहीं पता पूरा
यही अच्छा कि उसे मत लिखना

जानते आप बात हैं जितनी
आप उतनी ही इबारत लिखना

मत कहो यह कि ज़माना है बुरा
आपकी जो है शिकायत लिखना

मिला जो प्यार उसे भी लिखना
मिली गर आपको नफरत लिखना

बचेंगे शब्द मिटेंगे हम जब
समझकर इनको विरासत लिखना

यूं ही कुछ भी लिखे से अच्छा है
किसी अपने को एक खत लिखना

न किसी और से सही बेहतर
आज 'यश' कल से तो उन्नत लिखना

मौत के लब पे वफा का कोई निशान नहीं था
मैं यूँ ही तो लबे-जाँ बहुत परेशान नहीं था।

प्यार मरने वाला था, इन्तजार मरने वाला था।
वो संगदिल नहीं था कि उसे इमकान नहीं था।

जख्म पर चिपक गए उसके हजारों फूल..
कौन कहता है कि दर्द से वह हलकान नहीं था।

इस दुनिया में गम के इतने रंग हैं साहिब!
कि मत कहो खामेशियों में कोई तूफान नहीं था।

हम तमाशबीन ही रहे हर दौर में संजय।
फिर भी कैसे कहे कि वहाँ कोई इन्सान नही था।

परिंदों से सीखा हमने उड़ने का जब शउर
उस बस्ती से चले तो हमारा कहीं मकान नहीं था।

कोरोना तुम को क्या कहें, कितनी बद्दुआ दें
उठा कर चल दिए,कोई खैरात का सामान नहीं था।

संजय कुमार सिंह

नदियां

प्रक्षालन कर
रही है जिसका,
खग-विहग,मोर
मगन आलाप कर रहे,
यक्ष ,गंधर्व, किन्नर
धरा पर उतर
इन स्वर लहरियों में,
संगत दे रहे
सूरज ,चांद, तारे
उतर रहे करने ,
आरती सृष्टि की
इस आत्मिक अनुभूति को,
चाहिए बस एक सुंदर दृष्टि।

भारतीयता की भाव
अनुभूति विलक्षण है
विराट संगीत,
विराट सत्ता का
स्तुति वंदन है,
कण- कण में जैसे घुला
सुनहरा चंदन है
विलक्षण ,अप्रतिम ,
अद्भुत नाद है
हवाओं में मधुरम बज रहा
बांसुरी का प्रेमराग है,
जो ह्रदय का गीत है
धड़कनों की मौज है
कुछ और नहीं,
सिर्फ अध्यात्म का ओज है
रे आदम कद ! अब बता
फिर तुझे किसकी खोज है!

अनुपमा अनुश्री,

बच्चा और युद्ध

चारों तरफ छिड़ी हुई है
जंग/तबाह हो रहे हैं
शहर-दर-शहर
मारे जा रहे हैं अनगिनत
बेकसूर नागरिक।
घरों में कैद हैं/डरे-सहमे लोग
खिड़कियों से झांक रहा है
बच्चा/देख रहा है
कोहराम मचाते
बम-मिसाइलों को
वह नहीं जानता कि
आखिर, क्यों हो रहा है युद्ध?
डरा-सहमा बच्चा
माँ-बाप से ज़िद करता है
बारी-बारी कि रोक दो
ये सारा विध्वंस,
क्योंकि वह दुनिया में
सबसे ताकतवर समझता है
माँ-बाप को-
उम्मीद है उसे/वे रुकवा सकते हैं
युद्ध/जैसे रोक देते हैं
आसानी से घर के झगड़े
कर लेते हैं हल
बड़ी से बड़ी समस्याएं,
बच्चे की बार-बार ज़िद पर
लाचारी से ख़ामोश हैं
माँ-बाप/नम हो जाती हैं
उनकी आँखें
कैसे बताएं वे बच्चे को कि
धरती के तथाकथित
'ईश्वरों' के बीच है युद्ध
जो नहीं समझते
प्यार-मानवता की भाषा,
वह जानते हैं तो सिर्फ और सिर्फ
ताकत की भाषा
चाहते हैं सिर्फ-
वर्चस्व, विस्तार और प्रभुत्व!

इसलिए जारी रहेगा युद्ध!

अभी जारी है युद्ध
जारी ही रहेगा
जब तक
नहीं होगी पूरी तरह
उनके अहम की तुष्टि!
युद्ध
शांत हो भी कैसे सकता है
तब तक-
जब तक पूरी तरह
लहूलुहान न हो जाये
मानवता,
विध्वंस न हो जाये
इस समूची
खूबसूरत दुनिया का
और कायम न हो जाए
उनका वर्चस्व।
उन्हें/बहुत प्रिय है युद्ध
उतना-
जितना नहीं प्रिय है
मासूम बच्चों की
बिंदास खिलखिलाहट,
सांस लेते/चैन से
सोते-जागते शहर,
और बेखौफ-सी
मानवता।
वे जारी रखेंगे/युद्ध
क्योंकि/वे जारी रखना चाहते हैं
जीवन के खिलाफ
अपनी मदमाती
कुटिल मुहिम
नहीं पसंद है उन्हें
मुस्कुराते मनुष्य
और/जीवंत
घर-मोहल्ले-शहर,
क्योंकि-
अपनी अलग दुनिया है उनकी
जहाँ, नहीं बोली जाती
प्रेम की भाषा,
सबसे प्रिय है उन्हें
उनका अहम
और वर्चस्व की अभिलाषा
जो नहीं देखती
भला-बुरा/सही-गलत।
सुनो! उन्हें शांत करना ही है
अहम/चाहिए सिर्फ
दबदबा/जयकार
इसलिए युद्ध और विनाश
करते रहेंगे वे/अनवरत
है कोई रोकने वाला उन्हें?

● सुबोध श्रीवास्तव

लोक संवेदना के यथार्थ सर्जक: नागार्जुन

साहित्य और संवेदना का अटूट रिश्ता है। यह रिश्ता जब वास्तविक जीवन में भी फलीभूत होता है तो विलक्षण रचनाधर्मिता

का जन्म होता है। साहित्य सिर्फ रचने का नाम नहीं बल्कि जीने का भी नाम है। तभी तो कहा गया है कि सार्थक साहित्य वह है जो

जीवन के साथ चले। ऐसे ही मिजाज के साहित्यकार थे- बाबा नागार्जुन। अपने फक्कड़ मिजाज, यायावरी, ठेठ लहजे और बेलौस

कविताई के लिए प्रसिद्ध नागार्जुन हमेशा लोक-चेतना व संघर्ष के साथ चले और सदैव शोषित मानस का पक्ष लिया। जन संघर्ष

में अडिग आस्था, जनता से गहरा लगाव और एक न्यायपूर्ण समाज का सपना- ये तीनों गुण नागार्जुन के व्यक्तित्व में ही नहीं,

उनके साहित्य में भी घुले-मिले हैं। समकालीन विसंगतियों, विद्रूपताओं और जटिलताओं को चुनौती देते उनके तेवर बार-बार

परिलक्षित हुए।

30 जून 1911 को गाँव सतलखा, मधुबनी, बिहार में जन्मे नागार्जुन ने हिन्दी साहित्य में 'नागार्जुन' तथा मैथिली में 'यात्री'

उपनाम से रचनाएँ कीं। उनके पिता गोकुल मिश्र जी तरउनी गाँव के एक साधारण किसान थे और खेती-बाड़ी के अलावा पुरोहिती

के सिलसिले में आस-पास के गाँवों में आया-जाया करते थे। ऐसे में उनके साथ-साथ नागार्जुन भी बचपन से ही 'यात्री' हो गए।

नागार्जुन की प्रारम्भिक शिक्षा संस्कृत में हुई किन्तु आगे स्वाध्याय पद्धति से ही उनकी शिक्षा बढ़ी। चूँकि वे बचपन से ही

यायावर थे, अतः उन्हें ऐसे लोगों की संगति पसंद थी। राहुल सांकृत्यायन की यायावरी जगजाहिर है, ऐसे में उनके द्वारा किये गए

'संयुक्त निकाय' का अनुवाद पढ़कर नागार्जुन

का मन हुआ कि ग्रंथ मूल पालि में पढ़ा जाए। फिर क्या था, उनका यायावरी मन

उद्धिग्न हो उठा और इसके लिए वे श्रीलंका चले गए जहाँ वे स्वयं पालि पढ़ते थे और मठ के भिक्षुओं को संस्कृत पढ़ाते थे। यहीं वे

बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गए।

नागार्जुन की यह यायावरी सिर्फ घूमने और ज्ञानार्जन तक ही नहीं रही बल्कि साहित्य के क्षेत्र में भी उनकी यह यायावरी और

फक्कड़पन परिलक्षित होता है। उन्होंने 20वीं सदी के तीसरे दशक में साहित्य में कदम रखा, जब उनकी उम्र करीब 25 साल की

थी। तात्कालिक राजनैतिक परिवेश का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा। वे राजनैतिक परिवर्तन की लालसा रखने वाले कवि थे। यह वह

दौर था देश की आजादी के लिए लड़ाई का, आंदोलनों का और साहित्य भी इससे अछूता नहीं था। उस समय हिन्दी साहित्य में

छायावाद उस चरमोत्कर्ष पर था, जहाँ से अचानक तेज ढलान शुरू हो जाती है। ऐसे ही माहौल में नागार्जुन ने अपनी

अभिव्यक्तियों को शब्द देने आरंभ किये। उन्होंने 1936 में लेखन की शुरुआत की।

नागार्जुन की आरंभिक कविताओं के तेवर से ही स्पष्ट है कि वे विज्ञापन या चकाचैंध की बजाय जमीनी हकीकत को ज्यादा

महत्व देते हैं। वे उनकी बात करते हैं जो वाकई जमीन से जुड़े हुए हैं, संघर्षों से जुड़े हुए हैं, खुरदुरे यथार्थों से रोज टकराते हैं। इस

रूप में उनकी कविताओं में कबीर से लेकर धूमिल तक की पूरी हिन्दी काव्य-परंपरा एक साथ जीवंत है। वस्तुतः नागार्जुन का

रचना-संसार अपने अन्दर एक विविधता लिए हुए है। सिर्फ विधाओं के स्तर पर ही नहीं, भाषाओं और बोलियों के स्तर पर भी।

देसी बोली के ठेठ शब्दों से लेकर संस्कृतनिष्ठ शास्त्रीय पदावली तक उनकी भाषा के अनेकों स्तर हैं। मैथिली, हिन्दी और संस्कृत

के अलावा पालि, प्राकृत, बांग्ला, सिंहली, तिब्बती इत्यादि अनेकानेक भाषाओं का ज्ञान उन्हें और समृद्ध बनाता है। पर इस बात

का उन्हें कोई घमंड नहीं था, बल्कि इसका उपयोग कई बार वे सामान्य से लगने वाले स्थानीय दृश्यों या अनुभव-प्रसंगों को उनकी

भाषा में उकेरकर सहज महसूस करते थे। चर्चित आलोचक नामवर सिंह की मानें तो, तुलसी के बाद नागार्जुन अकेले ऐसे कवि हैं,

जिनकी कविता की पहुँच किसानों की चैपाल से लेकर काव्य रसिकों की गोष्ठी तक है। अपनी इसी विशेषता के कारण वे श्रमशील

जनता के पक्ष में खड़े होते थे। उन्हें इस बात का गर्व था कि वे एक कवि थे और कवि का कार्य समाज के सामने सच रखना है-

जनता मुझे पूछ रही है, क्या बतलाऊँ ?

जनकवि हूँ मैं सत्य कहूँगा, क्यों हकलाऊँ ?

यही कारण है कि नागार्जुन को भावबोध और कविता के मिजाज के स्तर पर सबसे अधिक निराला और कबीर के साथ जोड़कर

देखा गया है। उनका 'फक्कड़पन' और 'यायावरी' भारतीय मानस एवं विषय-वस्तु को समग्र और सच्चे रूप में समझने का

साधन रहा है। कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि, नागार्जुन का सक्रिय, गतिशील और प्रतिबद्ध सुदीर्घ जीवन उनके काव्य में

जीवंत रूप से प्रतिध्वनित-प्रतिबिंबित होता है-

'अपने खेत' में हल चला रहा हूँ/इन दिनों बुआई चल रही है

इर्द-गिर्द की घटनाएँ ही/मेरे लिए बीज जुटाती हैं

हाँ, बीज में घुन लगा हो तो/अंकुर कैसे निकलेंगे!

यह भी एक अजीब संयोग है कि नागार्जुन की कविताओं को आरंभ में उनके समकालीनों ने महत्व नहीं दिया। वे अपनी पुस्तकें

खुद ही झोले में लेकर बाँटते और बेचते थे। यह शायद बचपन की पुरोहिती और यायावरी का ही प्रभाव था कि वे हमेशा ज्ञान

बाँचा करते थे। उसके लिए उन्हें कोई मंच नहीं चाहिए था, कोई अवसर विशेष नहीं चाहिए था, किसी प्रकाशक या पत्र-पत्रिका की

कृपादृष्टि नहीं चाहिए थी। 1952 में उनका प्रथम काव्य-संकलन 'युगधारा' प्रकाशित हुआ। इसके बाद सतरंगे पंखों वाली (1959),

तालाब की मछलियाँ (1974), खिचड़ी विपल्व देखा हमने, हजार-हजार बाहों वाली, पुरानी जूतियों का कोरस, तुमने कहा था,

आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, इस गुबार की छाया में, ओम मंत्र, भूल जाओ पुराने सपने,

रत्नगर्भ, अपने खेत में (1988)

इत्यादि एक दर्जन से ज्यादा कविता-संग्रह प्रकाशित हुए। चना जोर गरम, खून और शोले, प्रेत का बयान इत्यदि काव्य-पुस्तिकाएं

भी चर्चा में रहीं। मैथिली में लिखा उनका ऐतिहासिक काव्य-संग्रह 'पत्रहीन नग्न गाछ' काफी प्रसिद्ध हुआ और इस पर उन्हें

1965 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। कालांतर में साहित्य अकादमी ने 1994 में साहित्य अकादमी

फेलो

के रूप में उन्हें नामांकित कर सम्मानित किया।

नागार्जुन का कविता-कर्म लोक सरोकारों से जुड़ा हुआ था। तभी तो उन्हें 'जन आंदोलनों और सामाजिक सरोकारों का कवि'

या 'क्रन्तिकारी कवि' कहा गया। उनके समय में छायावाद, प्रगतिवाद, हालावाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, अकविता, जनवादी

कविता और नवगीत आदि जैसे कई काव्य-आंदोलन चले पर उनकी कविता इन सब वादों से परे अपना स्वतन्त्र वजूद बनाती और

अपने काव्य-सरोकार 'जन' से ग्रहण करती। 'अकाल और उसके बाद' कविता की पंक्तियाँ मन को झकझोरकर रख देती हैं।

इसे विडम्बना ही कहा जायेगा कि लम्बे समय तक लोग उन्हें कवि नहीं मानते थे।

1978 में जब प्रभाकर माचवे के संपादन में

"आज के लोकप्रिय कवि" श्रृंखला में पहली बार नागार्जुन का नाम शामिल हुआ, उस समय तक उनका कोई काव्य-संग्रह किसी

प्रकाशक ने नहीं प्रकाशित किया था। जबकि इससे पूर्व उनके उपन्यास प्रकाशकों ने प्रकाशित किया था। वस्तुतः नागार्जुन ने कभी

भी किसी बँधी-बँधाई लीक का निर्वाह नहीं किया, बल्कि अपने काव्य के लिए स्वयं की लीक का निर्माण किया। दरभंगा के

महाराज के बुलावे पर वे कविता नहीं पढ़ने गए। उन्होंने सत्ता-प्रतिष्ठानों की परवाह कभी नहीं की। ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ

के आगमन पर उनका कवि-मन 'आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी' कविता के माध्यम से व्यंग्य रूप में अपना विद्रोह प्रकट करता

है।

नागार्जुन ने अपनी कविताओं में व्यंग्य की धार से लोक चेतना और सामाजिक सरोकारों के करीब अपने को पाया। सामान्य

जनमानस भी उनकी इन चुटीली पर कड़वी बातों को गहराई से महसूस करता था, क्योंकि बाबा ने अपनी कविताओं का भाव-

धरातल सदा सहज और प्रत्यक्ष यथार्थ रखा, वह यथार्थ जिससे समाज का आम आदमी रोज जूझता है। उनकी कविताएँ लोगों से

संवाद करती नजर आती थीं। अपनी कविताओं के इस पैनेपन, व्यंग्य की धार और सहजता के कारण ही नागार्जुन मंचों पर भी

छाए रहे। कई बार नागार्जुन की निगाहें ऐसे पहलुओं पर भी जाती थीं, जहाँ अन्य की नहीं पहुँचती। वे कविताएँ गढ़ते नहीं थे,

बल्कि परिवेश देखकर उनकी जुबान से स्वतः कविता निकलती थी। नागार्जुन की दृष्टि रोजमर्रा के ही उन दृश्यों-प्रसंगों के जरिए

वहाँ तक स्वाभाविक रूप से पहुँच जाती थी, जहाँ दूसरे कवियों की कल्पना-दृष्टि पहुँचने से पहले ही उलझ कर रह जाए।

नागार्जुन का रचना-संसार बड़ा विस्तृत है। एक दर्जन कविता-संग्रह, दो खण्ड काव्य, दो

मैथिली (हिन्दी में भी अनूदित)

कविता-संग्रह के साथ-साथ छः से अधिक उपन्यास, एक मैथिली उपन्यास, एक संस्कृत काव्य 'धर्मलोक शतकम' तथा संस्कृत

से कुछ अनूदित कृतियों के रचयिता रूप में साहित्य संसार में उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी है। उनकी कृतियों में- रतिनाथ की

चाची, बलचनमा, बाबा बटेसरनाथ, नयी पौध, वरुण के बेटे, दुखमोचन, उग्रतारा, कुंभीपाक, पारो, आसमान में चाँद तारे (सभी

उपन्यास), अन्न हीनम क्रियानाम (निबंध संग्रह), अभिनंदन (व्यंग्य), कथा मंजरी भाग-1, कथा मंजरी भाग-2, मर्यादा पुरुषोत्तम,

विद्यापति की कहानियाँ (सभी बाल साहित्य) का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। इसके अलावा मैथिली कृतियों में- पत्रहीन

नग्न गाछ (कविता-संग्रह), हीरक जयंती (उपन्यास) तो बांग्ला कृति में- मैं मिलिट्री का पुराना घोड़ा (हिन्दी अनुवाद) चर्चित हैं।

आज आजादी के एक लम्बे अंतराल बाद भी जब जनता अपने अधिकारों के लिए लड़ रही है, कुछ लोग उसके हकों पर कुंडली

मारकर बैठे हुए हैं, भ्रष्टाचार की विषबेल तेजी से फैल रही है, मंहगाई सुरसा की भांति हर साल अपना मुँह फैलाये ही जा रही है,

आम जन की आवाज को लाठियों के दम पर सत्ता-तंत्र द्वारा दबा दिया जाता है, वहाँ नागार्जुन की प्रासंगिकता स्वतः रेखांकित हो

जाती है। वह सिर्फ एक कवि नहीं थे, बल्कि जन-सरोकारों और जन-आंदोलनों को धार देने वाले एक फक्कड़ सेनानी भी थे। शायद

उनके जिन्दा रहते उनके शब्दों को उतनी तवज्जो नहीं दी गई, पर आज उनके आलोचक भी उनके योगदान को स्वीकार करते हैं

और उनके कृतित्व के पुनर्मूल्यांकन की बात करते हैं। इसके मूल में यही भाव छुपा है कि नागार्जुन ने रचनाधर्मिता के स्तर पर

तमाम प्रयोग किए, पर उनके मूल में जन-सरोकार ही रहे। नागार्जुन की कविताओं में जीवन के विभिन्न रंग हैं। उनमें राजनीति से

लेकर समाज, प्रकृति, संस्कृति, व्यंग्य, दलित, किसान, आदिवासी, स्त्री सभी शामिल हैं। चर्चित आलोचक नामवर सिंह से शब्द

उधार लेकर कहें तो- "कविता में विषय वस्तु से लेकर रचना विधान तक जितने प्रयोग नागार्जुन ने किए, वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। जिन

विषयों को दूसरे कवियों ने अछूत समझा, उन पर भी नागार्जुन ने खूब कलम चलाई। उन्होंने अपनी कविता में समाज के आखिरी

आदमी को हीरो बनाया।''

कृष्ण कुमार यादव,

पोस्टमास्टर जनरल,

वाराणसी परिक्षेत्र, वाराणसी-221002

मो.- 09413666599 ई-मेलः kkyadav.t@gmail.com

कृष्ण कुमार यादव : भारत सरकार में वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी। प्रशासन के साथ-साथ साहित्य, लेखन और ब्लॉगिंग के क्षेत्र में भी चर्चित नाम।

विभिन्न विधाओं में अब तक कुल 7 पुस्तकें प्रकाशित- 'अभिलाषा' (काव्य-संग्रह, 2005), 'अभिव्यक्तियों के बहाने' व 'अनुभूतियाँ और विमर्श' (निबंध-

संग्रह, 2006 व 2007), 'India Post : 150 Glorious Years' (2006), 'क्रांति-यज्ञ : 1857-1947 की गाथा', 'जंगल में क्रिकेट' (बाल-गीत

संग्रह, 2012) व '16 आने 16 लोग' (निबंध-संग्रह, 2014)।

देश-विदेश की प्रायः अधिकतर प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं और इंटरनेट पर वेब पत्रिकाओं व ब्लॉग पर निरंतर प्रकाशित। शताधिक पुस्तकों/संकलनों में

रचनाएँ प्रकाशित। आकाशवाणी लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, जोधपुर व पोर्टब्लेयर और दूरदर्शन से कविताएँ, वार्ता, साक्षात्कार का

समय-समय पर प्रसारण। व्यक्तित्व-कृतित्व पर एक पुस्तक 'बढ़ते चरण शिखर की ओर : कृष्ण कुमार यादव' (सं.- दुर्गाचरण मिश्र, 2009) प्रकाशित।

उ.प्र. के मुख्यमंत्री द्वारा ''अवध सम्मान'', पश्चिम बंगाल के राज्यपाल द्वारा ''साहित्य-सम्मान'', छत्तीसगढ़ के राज्यपाल द्वारा ''विज्ञान परिषद

शताब्दी सम्मान'', परिकल्पना समूह द्वारा ''दशक के श्रेष्ठ हिन्दी ब्लॉगर दम्पति'' सम्मान, अंतर्राष्ट्रीय ब्लॉगर सम्मेलन, भूटान में ''परिकल्पना सार्क

शिखर सम्मान'', विक्रमशिला हिन्दी विद्यापीठ, भागलपुर, बिहार द्वारा डॉक्टरेट (विद्यावाचस्पति) की मानद उपाधि, भारतीय दलित साहित्य

अकादमी द्वारा ''डॉ. अम्बेडकर फेलोशिप राष्ट्रीय सम्मान'' साहित्य मंडल, श्रीनाथद्वारा, राजस्थान द्वारा "हिंदी भाषा भूषण", वैदिक क्रांति परिषद,

देहरादून द्वारा ''श्रीमती सरस्वती सिंहजी सम्मान'', भारतीय बाल कल्याण संस्थान द्वारा ''प्यारे मोहन स्मृति सम्मान'', राष्ट्रीय राजभाषा पीठ

इलाहाबाद द्वारा ''भारती रत्न'', अखिल भारतीय साहित्यकार अभिनन्दन समिति मथुरा द्वारा ''कविवर मैथिलीशरण गुप्त सम्मान'', आगमन संस्था,

दिल्ली द्वारा ''दुष्यंत कुमार सम्मान'', विश्व हिंदी साहित्य संस्थान, इलाहाबाद द्वारा ''साहित्य गौरव'' सम्मान, सहित विभिन्न प्रतिष्ठित सामाजिक-

साहित्यिक संस्थाओं द्वारा विशिष्ट कृतित्व, रचनाधर्मिता और प्रशासन के साथ-साथ सतत् साहित्य सृजनशीलता हेतु शताधिक सम्मान और मानद

उपाधियाँ प्राप्त।

कृष्ण कुमार यादव

पोस्टमास्टर जनरल, वाराणसी परिक्षेत्र, वाराणसी, उ.प्र.-221002, 09413666599

यूज एण्ड थ्रो

81 वें साल के पड़ाव से गुजरते हुए अक्सर मैं आगे देखने के साथ, कभी अपनी कुर्सी पर विचार शून्य सा बैठा पीछे की ओर देखा करता हूँमालूम नहीं मेरे दोस्त, या दूसरे उम्रदराज़ लोगों का अनुभव क्या है।

मेरी मेज़ पर चौड़े मुख की एक ख़ाली बोतल रखी है। यह मेरा कलमदान है। इसमें एक कैंची, कुछ पेंसिल और उनका शार्पनर, पेपर कटर , स्टेपलर , लिखने लिखाने जैसी चीज़ें धरी हैं।

इस पिटारे में कई पैन हैं। नासा म्यूज़ियम के ऐसे पैन भी जिनकी स्याही 100 बरस नहीं सूखेगी। कुछ ऐसे हैं जिनकी स्याही ख़त्म हो गई लेकिन वे भी फेंके नहीं गए हैं।मेरा उनसे संवेदनात्मक जुड़ाव है।

नतीजा यह है कि जब मुझे लिखने की ज़रूरत होती है तो इस भीड़ में चालू पैन ढूँढने पर बार-बार सूखे पैन हाथ में आते हैं। मैं झुंझला उठता हूँमुझे लगने लगता है कि "यूज एण्ड थ्रो" का अमरीकी या जापानी फ़ार्मूला मुझे भी अपना लेना चाहिए।

दूसरे ही पल बचपन में घर परिवार के दिए संस्कार और आदर्श मेरा हाथ पकड़ लेते हैं। मैं अभी उनको भूला नहीं हूँ।

जब देश आज़ाद हुआ, मैं आयु के सातवें वर्ष में था। उस उथल-पुथल के दौर में कस्बाई नगरों के म्यूनिसिपल प्राइमरी स्कूल , जैसे तैसे बच्चों को दाख़िला देकर दो दो पारियों में चल रहे थे।अजमेर के गांधी भवन में सुबह प्राइमरी हिन्दी स्कूल और दोपहर की पारी में शरणार्थी बच्चों के लिए सिंधी स्कूल लगता था। मैं उम्र के लिहाज़ से बड़ा हो गया था।साल बचाने के लिए मेरा दाख़िला सीधे तीसरी क्लास में करवाया गया।

उन दिनों बच्चों को पीली खड़िया से पुती लकड़ी की पट्टी पर कखग या १-२-३-४ लिखना सिखाया जाता था, मगर मैंने यह स्लेट पर ही सीखा।गणित या हिन्दी सुलेख के लिए स्लेट का इस्तेमाल होता।होमवर्क के लिए कापी और निब वाले होल्डर का प्रयोग

महेन्द्र महर्षि

किया जाता।

तब स्कूल में भी हर डैस्क पर एक दवात होती। हर सुबह इसमें स्याही भरी जाती। होल्डर बच्चे घर से लाते थे। लिखने के निब दो तीन तरह के होते। लेखन सुधार और भाषा की ज़रूरत के अनुसार उन्हें बदल लिया जाता।सभी बच्चे अतिरिक्त निब ज्योमेट्री बक्स में सुरक्षित रखते। अक्सर होता कि क्लास में तीन चार या कभी-कभी एक डैस्कबैंच पर जगह से ज़्यादा छात्रों को ठूँस कर बैठा दिया जाता। ज़रा झटका लगा तो स्याही से लबालब दवात छलक जाती।कपड़े, कापी किताबें रंगीन होने पर बच्चों को ही सजा मिलती।

मुझे याद आते हैं वे दिन जब, सभी चीज़ों की क़ीमत और उनसे जुड़े हिफ़ाज़त भाव की बड़ी क़द्र होती थी। अक्सर लकड़ी का वह होल्डर चटख कर बेकार हो जाता। निब भी घिस जाता। कभी यह भी होता कि होल्डर ज़मीन पर ऐसे गिरता कि निब मुड़ जाता। मुड़ा निब ठीक करने पर काग़ज़ फाड़ डालता। ज़्यादातर वह बेकार ही हो जाता। तब बहुत दुख होता।

उन दिनों का आदर्श यह था कि पढ़ाई लिखाई से जुड़ी हर सामग्री का सम्मान करो। टूटा हुआ होल्डर हो या निब , फटी हुई किताब कापी या शिक्षा से जुड़ी कोई सामग्री हो तो उसे कूड़े में नहीं फेंकना चाहिए। आदर से माथे लगाकर, किसी पेड़ के नीचे ऐसे रखा जाए कि वह पैरों में न आए।अगर कोई किताब- कापी हाथ से गिर जाती तो उसे भी तुरंत माथे लगाना होता। यहाँ तक था कि अख़बार या कोई भी लिखित काग़ज़ या मैगज़ीन पर पाँव पड़ जाता तो उसे हाथ लगा माथे से छुआइए और ऐसी जगह रख दें जहां विद्या की देवी 'सरस्वती' का अपमान न हो।

अब समय के साथ जीवन के मूल्य बदल गए हैं। आदर की जगह तुच्छता और तिरस्कार भाव बढ़ा है।कापी किताब , कलम दवात अब साध्य नहीं, साधन हो चुके है। दवात की स्याही अब कैसे सूखे ? क़लम अब उसपर निर्भर नहीं।

आज मुझे अपने एक विशेष फ़ाउण्टेन पैन की याद आ गई। बचपन में बड़ों की जेब पर लगे पैन देखता तो मुझे बहुत रीस आती। सोचता, मेरे पास भी ऐसा पैन होना चाहिए। आठवीं पास कर बतौर इनाम मैंने पिताजी से ज़िद की।

मुझे जो फ़ाउण्टेन पैन मिला उसका ब्राण्ड नेम "पैरट" था।छींटदार हरे रंग के पैन के ढक्कन पर सुनहरी क्लिप उपर गोल घूमी हुई थी जो जेब के उपर से झांकती सी यह दर्शाती कि मेरी जेब में भी 'फ़ाउण्टेन पैन' है।

उन दिनों मामूली चीजों का नशा भी सिर चढ़

कर बोलता। याद आने पर लगता है कि कैसे छोटी छोटी ख़ुशियों का मज़ा , मुँह में घुल रही लेमनचूस की गोली की तरह आया करता था।

बदलते वक्त ने कहीं कहीं मेरा नज़रिया भी बदल दिया है।मैं भी चीजें कूड़ेदान में फेंक दिया करता हूँ। लेकिन अजीब बात है कि आज जब लिखते हुए कोई पैन रुक जाता है पहले तो मन में आता है कि अब इसे फेंक दूँ। तभी मैं सोचता हूँ कि जिस शिद्दत से इस बाल पैन ने मुझसे जो भी लिखवा दिया , उसका वजूद तो उसी पैन की स्याही से है। इस ख़्याल के आते ही मैं बेकार हो गए बालपैन को फिर डब्बे में धर लेता हूँ।

यदाकदा सोचता हूँ, मैं इस भौतिक पैन की क़द्रदानी ढोने में लगा हूँ जबकि संसार में लोग काम निकल जाने पर अपनों को भी "यूज एण्ड थ्रो" वाले सामान की तरह पीछे छोड़ आगे निकल लेते हैं।ज़माना तो "यूज एण्ड थ्रो" पैन का चल निकला है।

तकनीक ने अब क़लम को साधने के लिए साथ आने वाली उँगलियों-अँगूठे का जुड़ना भी छीन लिया। लैपटॉप के आने पर काग़ज़ 'डिस्कार्ड' में गया, रफ़ वर्क ' बिन' में तो कबाड़ 'जंक' में। बचा शेष या अति-विशेष , 'क्लाउड' में।

यहीं 'फ्लिकर' की चादर में लिपटे पड़े हैं ऐसे राज, जिन्हें खोलने वाले जूलियन असांज की तरह , दुनियाँ भर के क़लम भीरुओं पर शिकंजा कसने की क़ानूनी पैंतरेबाज़ी जारी है।

लेकिन भूलना नहीं होगा कि ये 'बादलों ' में दुबके राज कभी 'दफ़्न' नहीं हो पाएँगे।तकनीक के सहारे तो अब"सीड-क्लाउडिंग"से बारिश भी की जाती है!

नया ज़माना 'पासवर्ड' माँग रहा है।जिसे मिला उसने ही "बादल-फोड़" खलबली मचा दी है।

दूरदर्शन अपार्टमेंट, गुडगांव

राजेन्द्र पाण्डेय के तीन काव्य संग्रहों का विमोचन

छत्तीसगढ हिन्दी साहित्य मंडल द्वारा रायपुर के वृन्दावन सभागार में आयोजित एक गरिमामय कार्यक्रम में कवि आचार्य पंडित राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय जी के कविता संग्रह 'अतिथि देवो भवः' (हिन्दी) एवं छत्तीसगढी में लिखी कविताओं के दो संग्रह 'महतारी के हाथ' एवं 'मोर गॉव के बिहान' का विमोचन कार्यक्रम संपन्न हुआ।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'ककसाड' के संपादक डॉ राजाराम त्रिपाठी जी ने लिखते जाने के महत्व एवं इसकी जरूरत को रेखांकित करते हुए अपनी बात रखी। डॉ मृणालिका ओझा ने कहा कि पाण्डेय जी ने अपनी रचनाओं में लोक रीति रिवाज, सांस्कृतिकता और राष्ट्रीयता को प्रमुख रूप से उजागर किया है। डॉ रामकुमार बेहार एवं शीलकांत पाठक जी ने भी अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर कवि राजेन्द्र पाण्डेय जी ने भी तीनो संग्रहों में से एक - एक कविता का वाचन किया। श्री तेजपाल सोनी जी, श्री रिक्की बिंदास जी, डॉ जे के डागर जी, श्री बच्छावत जी, श्री यशवंत यदु जी आदि ने भी अपनी कविताएं प्रस्तुत की।

कार्यक्रम की अध्यक्षता आचार्य अमरनाथ त्यागी जी ने की। विशिष्ट अतिथि श्री अम्बर शुक्ला अंबरीश एवं श्रीमती लतिका भावे थे। कार्यक्रम का संचालन सुनील पाण्डेय एवं श्री गोपाल सोलंकी जी द्वारा आभार व्यक्त किया गया।

राजेन्द्र ओझा, रायपुर, छत्तीसगढ

श्रमिक

श्रम ईश्वर वरदान मनुज क्यों चोरी करता।
सदा श्रमिक हरि रूप तुझे आदर है करना।।
श्रमिक करे शृंगार धरा तब सँवरा करती।
दिखे श्रमिक में क्लेश मनुज श्रद्धावनत् हरना।।

श्रमिक करे श्रमदान तभी हर क्यारी सजती।
मानवता की नेह नदी बहती बलखाती।।
श्रम श्रद्धा से स्नात सदाशिव कहलाता है।
श्रम संबल के योग धरा की कृषि लहराती।।

श्रमिक देव गणराज प्रथम वंदन है करना।
इनके श्रम वरदान सजे मानव फुलवारी।।
दिग्दिगंत नित रहे सुवासित महके धरती।
नहीं जानना बल पौरुष को विस्मयकारी।।

भागीरथ श्रम योग धरा पर गंगा लाए।
श्रद्धा से परिपूर्ण घाट पर मेला लगता।।
गया युगांतर बीत आज भी वंदन होता।
जहाँ श्रमिक जन पूज्य वहाँ उर नंदन जगता।।

श्रमिक जनों के योग गगन पर यान विचरता।
श्रमिक जनों के योग गहन सागर अवगाहा।
श्रम के केवल गान धरा गुंजित है नभ तक।
केवल श्रम वरदान रूप मिलता मन चाहा।।
मिले श्रमिक को क्लेश क्लेश धरती पर जागे।
मिले श्रमिक को मान मान धरती पा जाती।।
करो नमन सौ बार चरन रज माथे धरना।
बने प्रकृति अनुकूल सभी के मन को भाती।।

श्रम ही तो आराध्य देवता श्रमिक हमारे।
केवल श्रम के योग धरा पर है उजियारा।।
राम नाम का योग कभी जब श्रम को मिलता।
मिले मनुज को जीत और रावण भी हारा।।

राम सेतु आख्यान पढ़े मत विस्मय करना।
श्रम के लिखकर काव्य मगन मन होकर गाना।
कल्पनेश तज भ्राँति श्रमिक-श्रम संबल गहना।
जीवन सफलीभूत मान निज शीश चढ़ाना।।

चींटी का श्रम देख सीख लेना है तुझको।
जो करता उद्योग कृपा लक्ष्मी की पाता।।
बीते काली रात उषा के गीत सुहाए।
खग कुल कलरव गान कि जैसे मानव गाता।।

श्रम के ही जय गान दिशाएँ गुंजित सारी।
ग्रह जितने नजदीक पड़ोसी पुर के जैसे।।
श्रम के जो जन वीर सदा पद वंदन करना।
गाना यश के गीत यशस् उनके हैं कैसे।।

बाबा कल्पनेश

साक्षात्कार

"सर, अपनी लेखन यात्रा के बारे में कुछ बताइये? आपको पढ़कर तो यही लगता है कि आप बचपन से पढ़ने के शौक़ीन रहे हैं। आप समाज को क्या संदेश देना चाहते हैं।"

साक्षात्कार लेने आये व्यक्ति ने प्रश्न किया तो मैं मुस्कुरा उठा।याद आया बचपन और जवानी का वह दौर जब पढ़ाई के नाम से मेरी रूह फ़ना हो जाती थी। माता-पिता दोनों ही मुझे लेकर बहुत चिंतित रहते थे। एक रोज़ मेरे पिता ने मुझसे प्रश्न किया कि अख़िर क्यों मैं पढ़ाई को लेकर जी चुराता हूँ? मैंने भी अपनी सफ़ाई में कह दिया- "आप लोग कभी कहीं घुमाने ले जाने की बात क्यों नहीं करते? हर वक्त पढ़ाई की ही बात क्यों करते हैं।" उसके बाद ही पापा मुझे कोलकाता घुमाने लेकर गये उन्होंने वहाँ मुझे बहुत बड़ी लाइब्रेरी भी दिखाई और यह भी बताया कि यह भारत का सबसे बड़ा पुस्तकालय है। मैं चाहता हूँ कि जो भी तुम्हारे मन में हो वह सब तुम लिखा करो और एक दिन तुम्हारी लिखी हुई पुस्तक को यहाँ स्थान मिले। उसके बाद ही पापा हमें छोड़ गए थे। लेकिन उसी दिन से मैंने वयस्क मन में पनपने वाले हर भाव को पन्नों पर उतारना शुरू किया और खुद से एक वादा किया कि पढ़ेंगे क्योंकि पढ़ेंगे तभी बढ़ेंगे।

मेरे ख़याल को तोड़ते हुये उसने अपना प्रश्न दोहरा दिया। मैंने भी जवाब में कह दिया-"अवाम से बस एक बात कहना चाहता हूँ कि चलो वादा करें कि हम पढ़ने की आदत डालेंगे क्योंकि जब आप पढ़ेंगे तभी तो हम लिखेंगे।

ज्योत्सना सिंह

बाबा कल्पनेश

कुंडलिया

मानव का जंगल घना,कंक्रीट की भीति।
खतरे में मानव घिरा,उपजी दुखप्रद रीति।।
उपजी दुखप्रद रीति,मनुज रहता आतंकित।
यही नवल है क्रांति,विधा मानव चित टंकित।।
ज्यों-ज्यों विकसित ज्ञान,प्रकाशित होता दानव।
निगले जंगल वृक्ष,अरे कैसा यह मानव।।

करता पूजा-पाठ है,प्रातः पढ़े नमाज।
घंटा-शंख अजान दे,प्रजातंत्र के राज।।
प्रजा तंत्र के राज,ग्रहण पृथ्वी पर भारी।
तुच्छ स्वार्थ के हेतु,चलाये वन पर आरी।।
निर्मित सभ्य समाज,मनुज पशुवत है चरता।
खाकर सौ-सौ मूस,सुबह पारण है करता।।

अपने जंगल राज का,बदला हमने रूप।
जो मानव खुंखार अति,बन बैठा वह भूप।।
बन बैठा वह भूप,डरें जिससे हर मानव।
जो दानव का बाप,करे उसका क्या दानव।।
रहकर निर्भय नित्य,सभी के निगले सपने।
राजन कितने सभ्य,कहें हर मानव अपने।।

करता शेर शिकार ज्यों,मृग रहते भयभीत।
और सिंह शावक सभी,गाते मधुमय गीत।।
गाते मधुमय गीत,मनाते खुशियाँ सारे।
जग के सज्जन प्राणि,परंतु रहते हैं हारे।।
पर मानव खुंखार,कहाँ-किससे-कब डरता।
उपजे जो सुख-शाँति,ग्रहण कुल उसको करता।।

वन से ही सुख-शाँति है,दें अकूत फल-फूल।
नगर-गाँव को मिल रहा,नगर-गाँव से शूल।।
नगर-गाँव से शूल,मिले उर में है चुभता।
कल्पनेश हो भ्राँत,यहीं से चाहे शुभता।।
इसीलिए दिन रात,किए शोषण है मन से।
रखे शत्रु सा भाव,सुपोषित हो जिस वन से।।

तजकर सरिता गिरि-गुहा,आती है मैदान।
अरण्य मध्य का धर डगर,करती कल-कल गान।।
करती कल-कल गान,नगर-ग्रामों से होकर।
हो जाती बदरूप,प्रेम जंगल का खोकर।।
देता गंदा रूप,शिवा-शिव अल्ला भजकर।
मानवता का भाव,हृदय से अपने तजकर।।

लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

प्रेम की कविताएँ, मुझे पढ़ना व लिखना पसंद,
ऐसी कविताओं में छुपे होते हैं, जीवन के रंग।
सच में पढ़ते-लिखते रहो इन्हें, कभी मन न भरे,
प्रेम की कविताओं में मिले, खुशियों की उमंग।।

प्रेम की कहानियाँ, खूब मन से पढ़ी जाती हैं,
प्रेम पर सबसे अधिक, कहानी लिखी जाती हैं।
वास्तव में प्रेम में सरोबार हैं, ये सकल ब्रह्मांड,
लोगों से प्रेम की, अमर कहानियाँ सुनी जाती हैं।

जिसने प्रेम न किया, उसका जीवन बेकार है,
प्रेम से ही जीवन का, इंद्रधनुषी रंग साकार है।
जीव-जंतु, पेड़-पौधें, मनुष्य, सब प्रेम के भूखे,
प्रेम से ही हमारा जीवन, लेता कई आकार है।।

प्रेम का एहसास होते ही, जी मचल जाता हैं,
प्रेम में होने पर चेहरे का, रंग खिल जाता है।
बिन प्रेम के जीवन का रंग, होता बहुत नीरस,
प्रेम मिलने पर हमें, सब कुछ मिल जाता है।।

ईर्ष्या और कटुता के बदले, प्रेम करना सीखिए,
प्रेम से जीवन का रंग, नितदिन बदलता देखिए।
नफरत के बजाय, प्रेम करना, है बहुत आसान,
प्रेम करके इस सुंदर जीवन का, आनंद लीजिए।।

लघु कथा

बोझ

अभी अभी डाकिया एक पत्र दे गया था।

पत्र विदेश से आया था,कनाडा से। जब प्रेषक का नाम देखा तो मन खुशी से झूम उठा ये पत्र अनिल का था अनिल व्यास का।

हम दोनों जब बी. ए. में पढ़ते थे तीस साल पहले तब कॉलेज में हमारी जोड़ी बहुत मशहूर थी। कॉलेज टाइम तो हम साथ साथ बिताते ही थे। उसके अलावा भी अधिकतर समय हमारा साथसाथ ही बीतता था।

शहर भर में हमारी दोस्ती की मिसाल दी जाती थी।
कुछ लोग चिढ़ते भी थे,कुछ लोग हमारी दोस्ती को नए नए नामों से भी पुकारते थे।

कोई जुगल जोड़ी,कहता था तो कोई जोगा भोगा कहता था,कॉलेज जीवन बड़े मजे से गुजर रहा था।

अब की बार कॉलेज में चुनाव की घोषणा हुई तो सभी लोगों ने और अनिल ने भी मुझे चुनाव लड़ने के लिए जोर डाला था।

और सब मित्रों और साथियों का मन रखने के लिए मुझे चुनाव में खड़ा होना पड़ा था। मैं सांस्कृतिक मंत्री पद के लिए चुनाव में खड़ा हुआ था, सभी यार दोस्त यहां तक कि लड़कियां भी मेरे लिए चुनाव प्रचार कर रहीं थीं।

अनिल तो जी जान से लगा हुआ था।आखिर चुनाव हुआ जब रिजल्ट आया तो मैं एक वोट से चुनाव हार गया।था

कॉलेज की पढ़ाई पूरी करने के बाद अनिल के पिताजी का ट्रांसफर दूसरे शहर में हो गया।
कुछ दिनों तक तो उसके पत्र आते रहे फिर धीरे धीरे यह सिलसिला खत्म हो गया।

आज बीस वर्ष बाद अचानक कनाडा से यह पत्र अनिल व्यास मेरे प्यारे दोस्त का आया था,पत्र पा कर मुझे अत्यंत खुशी हो रही थी।

मैने शीघ्रता से पत्र खोल डाला मैं जानना चाहता था कि वो कहां है क्या कर रहा है और उसने मुझे अभी तक याद क्यों नहीं किया था।

उसने लिखा था प्रिय मित्र नरेश
दीदी की शादी कनाडा में हो गई थी, कुछ दिनों बाद उन्होंने मुझे भी वहीं बुला लिया था। मैंने वहीं नौकरी कर ली और शादी भी वहीं कर ली

यह पत्र मैं तुम्हे इसलिए लिख रहा हूं क्योंकि मेरे दिल पर एक बोझ है। जो मैं विगत पच्चीस वर्षों से उठाए हुए हूं.....
वो ये कि तुम जो सांस्कृतिक मंत्री पद का चुनाव हारे थे। उस हार का कारण मैं था।

उसमें मैने अपना वोट तुम्हे नहीं बल्कि गोपाल को दिया था दिया था। क्योंकि मैं समझता था तुमसे ज्यादा योग्य प्रतिनिधि वो है। आशा है क्षमा कर दोगे आगे कुछ नहीं लिखा था।

तुम्हारा अनिल व्यास

डा.रमेश कटारिया पारस

लघु कथा

बोझ

अनगिनत महीनों से चलते मुकदमे की यह अंतिम पेशी भी हो सकती थी। परिवारवालों ने शहर का सबसे काबिल वकील रखा था। कोई चश्मदीद गवाह था नहीं, अतः जज ने उसके कहे को ही सच मानकर उसे निर्दोष करार देकर, हादसे को दुर्घटना बताते हुए उसे बाइज्जत बरी करने की घोषणा करनी चाही।

पर वह बड़ी जोर से चिल्लाया, "जज साहब! मैं निर्दोष नहीं हूँ। मैंने ही पीछे से इशिका को धक्का दिया था, जिससे वह नहीं रही। वह वैवाहिक बंधनों को नकारकर वरुण के साथ जाना चाहती थी। वरुण ऑफिस में मेरा जूनियर था। मैंने ही दोनों की मुलाकात कराई थी और वर्ष भर में...। दोनों की पसंद नापसंद में बहुत साम्य था। स्मार्ट एवं जीवंत व्यक्तित्व के कुंवारे वरुण की उसकी जिंदगी में प्रवेश हुआ और मैं हाशिए पर आने लगा। उस दिन रिसोर्ट के स्विमिंग पूल के पास सहज भाव से मुझसे रिश्ता खत्म कर उसके साथ जाने की अनुमति चाही थी उसने। मैं ठहरा पुरातनपंथी, संयम का झूठा मुखौटा ओढ़े, मौका ताककर उसे दुनिया से ही विदा कर दिया।"

"इशिका एक कुशल तैराक थी। दुर्घटनाग्रस्त कैसे हो सकती थी?"

"डाइव बोर्ड पर से धक्का दिए जाने से वह असंतुलित होकर सर के बल स्विमिंग पूल में जा गिरी थी और।"

रहस्योद्घाटन से उसके माता-पिता संग सारी अदालत सन्नाटे में आ गई। अदालत का फैसला जो भी हो, उसे मंजूर था। इशिका का मृत शरीर देखने के बाद से वह स्वयं भी मृतप्राय ही था। किसी इंसान को जबरन थाम कर कैसे रख सकते हैं? काश, समय रहते वह समझ पाता, काश...।

स्वीकारोक्ति के बाद उसे लगा कि अंतरात्मा पर से भारी बोझ ऊतर गया है। उसका स्थान ईहलोक में हो या परलोक में, क्या फर्क पड़ेगा? तभी इशिका का चेहरा सामने अदालत की दीवार पर जैसे उभर आया। उसकी आँखों में जलती क्रोध की ज्वाला का स्थान सुकून ने ले लिया था।

नीना सिन्हा पटना

केशव शरण

यह मौसम

यह मौसम ऐसा है कि
किसी को भी तर कर सकता है
जहाँ ज़रा भी हवा रुकी
अभी शेष है जून का महीना भी
तर है श्रमिक
धूप में
फावड़ा चलाता
उसके हिस्से
श्रम का भी स्वेद
और सूर्य से उत्पन्न पसीना भी।

फिर क्यों न इतनी

तर है किसान
धूप में
प्रेम और पसीने से
तर करते हुए पौधों को
क्यारियों में क़रीने से

फिर क्यों न इतनी
स्वस्थ, ताज़ा, हरी तरकारी होगी
जो आँखों को सुकून दे
और खाने वालों के जिस्म में
जीवनवाही ख़ून दे !

आधी-आधी जड़ें

आधी जड़ें
ज़मीन के अंदर हैं
आधी जड़ें ऊपर
पेड़ है कि कोई लघु भूधर
अपने तने के सहारे
आसमान में लटका
इंसान की कई पीढ़ियाँ
इसके नीचे छहाँई होंगी
जैसे यह पथिक
तेज़ चमकती धूप में रास्ता भटका
और थकित।

छंद : बाबा कल्पनेश

कहते आए कब से वेद पुराण।
नैतिकता में ही जीवन कल्याण।।
मानव के हित श्रेष्ठ यही वरदान।
महापुरुष के अधरों का यह गान।।

अच्छा लगता जो तुमको व्यवहार।
निज जीवन में करना वह आचार।।
जीवन पथपर जब रोपोगे फूल।
सबके हित में यह होगा अनुकूल।।

कल्पनेश निज अधर कभी जब खोल।
सर्व हितैषी ही वाणी नित बोल।।
लगे सभी को बाँट रहे हो प्यार।
जब तक जीना करना यह व्यापार।।

प्रिय लगता जो वही करो तुम दान।
सुखदायी है यह तो अनुपम ज्ञान।।
हृदय रहे जब प्रेम भरा भंडार।
तुमने पाया जानो जीवन सार।।

वृक्षारोपण करना छायादार।
खगकुल कलरव का होगा आगार।
देना ही है पाने का आधार।
करके परहित निज करना उपकार।।

इन वृक्षों से फल मिलते रसयुक्त।
इन्हें रोपकर ऋण से होना मुक्त।।
जगत जनों का होता है उपकार।
और मनुजता पा जाती विस्तार।।

प्यासे जन को दौड़ पिलाना नीर।
विपतिकाल में रखना-देना धीर।।
सबके हित में चिंतन करना श्रेष्ठ।
यही आचरण करते आए ज्येष्ठ।।

मान-प्रतीष्ठा सिर पर चाहो मौर।
नहीं छीनना निर्बल जन के कौर।।
हाय उठेगी निर्बल जन के श्वाँस।
मिला करेगी इससे कटुक धुआँस।।

तुम्हे दिए हैं यह विवेक श्री ईश।
प्रबल चेतनायुक्त तुम्ही जगदीश।।
निज विवेक का करके तुम उपयोग।
जीव चराचर के सँग करना भोग।।

परहित में रत बहती सुरसरि धार।
सीखो इससे ही जीवन का सार।।
सज्जन से मिल जानो सद्व्यवहार।
किए आचरण निश्चय हो उद्धार।।

करना ही नहीं चाहिए लड़की से विवाह

लड़कियों के कद बढ़ जाते हैं
रह जाती है पीछे कहीं उम्र उनकी
यह बात जब तक घर वालों को पता
चलता है
तब तक घर से निकल लेती है लड़की
अपना सबकुछ समेट कर।

गांव समाज कि मानसिकता ही
कह लिजिए उनके लम्बाई देह से आंकते हैं
उनकी समझ बूझ और वयस्कता
नियम कानून के बावजूद भी
कई वर्षों से मानसिक रूप से ब्याही
जाती है लड़की किसी अनजान लड़के से।

मैं थूकता हूं वैसे समाज पर जिन्होंने
दहेज के डर से अनदेखा किया है
वर वधु के उम्र सोच विचार और शिक्षा को
ब्याही गई हैं कई जवान लड़कियां
वयस्क व्यक्तियों से
खुलकर बोलता है अतीत हमारा।

कुछ नहीं तो होना चाहिए बात विचार
तय होनी कद काठी उम्र समझ
बहुत जरूरी है आज एक लड़की का स्त्री
होना
स्त्री से मां होना काफी आसान होता है
लड़की जुझती है अपने आप से ही अक्सर
करना ही नहीं चाहिए लड़की से विवाह।

-आलोक रंजन

फुलबा

रामानुज अनुज

एक ऐसी कहानी जो बिल्कुल सत्य है, लेकिन कौन भरोसा करेगा? जब झूठी और नकली कहानियों ने बीच सड़क में मजमा लगा रखा तो तब सीधी-सच्ची और सीख देने वाली कहानियों को कौन दो पल ठहरकर सुनेगा? फिर भी मैं उस कहानी को लेकर हाजिर हुआ हूँ। ऐसी कहानी अलादीन के चिराग से निकला जिन्न भी नहीँ ढूंढ़ सकता है।

जब पूरा उत्तरी और मध्य भारत कड़ाके की ठंडी से कड़कड़ा रहा था।

बड़ी-बड़ी शक्तिशाली रेलगाड़ियों तक ने ठंड और कुहरे के डर से

चलना-फिरना बन्द कर दिया था। तीसमार -खां पहलवान, कुश्ती लड़ना बंद कर रजाई में दुबक गये थे। जीवन की गाड़ी किसी तरह से अलाव तापकर घिसट रही थी, सूरज दादा कुहरे के डर से धूप की सप्लाई धरती वालो को रोक दिए थे, तब ऐसे मुश्किल समय में मेरी इकलौती कहानी ने जिद पकड़ ली, बोली--- बाबू! मुझे भी किसी पत्रिका या अखबार के रविवारीय पेज में छपने के लिये भेजो न, कितना सुन्दर लगता है रंग-विरंगे कागज में किसी सुंदरी के बगल में बैठ जाना। उसके साथ मुझे भी लोग कम से कम लोग निहार तो लेंगे, भले पढ़े न, रद्दी के कचरे में फेंक दे या फिर घर की मालकिन मुझे ताक में बिछा दे और ऊपर से प्याज-लहसुन की टोकरी रख दे, कोई बात नहीं, सब मंजूर है।'

मैंने उसे अपने तजुर्बे के अनुसार समझाया--- 'अरी! तू बेमतलब जिद करती है, इस जानलेवा ठण्ड में तुम्हें कहाँ भेज दूँ? मान लो भेज भी दिया तो बड़े बड़े लोगन के कविता-चुटकुलों के आगे तुम्हे कौन पागल अखबार वाला छापेगा। पत्र पत्रिकाओं में तो बड़े-बड़े लोगन के नाते रिस्ते वालों या फिर नेताओ के जूठन खाने वालों की रचनाएँ छपती हैं। तुझे कौन पूछेगा? मेरा कहा मान ले, तू बिना छपे ही ठीक है।'

लेकिन वो लड़ बैठी। बोली---'आप बहुत

डरपोक हैं, बाबू! भेजकर तो देखिये, उन्हें मुझको छापना पड़ेगा।'

'जिद न कर पगली, जो रचनाएँ आजकल छप रही हैं, वो भले ही भीतर से खोखल और सड़ांध मारती हों लेकिन ऊपर से दिखने में बिल्कुल फ़िल्मी हीरोइन की तरह नकली चेहरे पर परफ्यूम लगाकर महकती हैं। अंग प्रदर्शन कर लोगों का मन बहलाती है। पलक झपकते ही वस्त्र बदलती हैं। हँसती हैं, हंसाती हैं, गुदगुदाती हैं, उत्तेजना लेती-देती हैं और एक तू है, सर में नीम का तेल चुचुआये दूर से ही गन्ध मारती है। अरी पगली तेरे बिवाई फटी एड़ियों को उधर कौन घुसने देगा। तेरे पास ढंग के कपड़े तक नही हैं। ठण्ड से बचने के लिए एक फटे कम्बल के अलाबा और क्या है तेरे पास? पहनने के लिये एक फटी फ्रॉक है। सोच, क्या यही फ्रॉक पहनकर उन लोगो के पास जायेगी?" अभी ठंड के दिनों में तेरी नाक बहती है। नाक सुड़कते हुये उन लोगों के बगल में कैसे छप सकती है। तुझे छापकर कोई अपनी मैगजीन गंदा नहीं करेगा। अपने पेट में कोई

अपना लात नहीं मार सकता है। तेरा नाम तक उन लोगों की समझ में नही आयेगा। नॉटी गर्ल, ओनली मी, डेढ़ गज की इश्कियां, लिली पॉइंट, लव बैक, हॉर्स टेल, गोल्डी, स्टोन प्रग्नेंसी, बीस चूतिये और हुश्ना आंटी जैसे नाम की कहानियां तुझे पास में बैठने देंगी?'

मैंने उसे समझाने में पूरी अकल लगा दी लेकिन वो कहाँ सुनने वाली थी। भगवान! किसी दुश्मन के दिमाग में भी ऐसी जिद्दी कहानी न दे या धोखे से दे ही दे तो पैदा करते ही गला घोंटकर मार दे, 'न रहेगा बांस न बजेगी बंसुरिया।'

मेरी बात को अनसुनी करती हुई वो तुनगकर बोली---'आप मेरा भला नही चाहते। नहीं चाहते 'फुलबा' को लोग देखें, फुलबा को दुनिया जाने, दुनिया में उसका भी नाम चले। बाबू तुम स्वार्थी हो। अपनी फोटो के साथ फुलबा का नाम नहीं जोड़ना चाहते। आज आप भी कान खोलकर सुन लो---मैं घर की बंद कोठरी में अब नही रह सकती---मुझे जाने दें या न जाने दें आपकी

मर्जी, मैं अब रुकने वाली नही हूँ।'

उस पगली को कौन समझाये, मै स्वार्थी नहीँ हूँ। बड़ी उम्र का तजुर्बा है मेरे पास इसलिये बड़ी सोच रखता हूँ, हमेशा उसका भला ही सोचूँगा।

'कैसे जायेगी और कहाँ जायेगी?' मैंने पूछा।

'मुझे नही मालुम कहाँ जाना है? किधर जाना है? कैसे जाना है? लेकिन अब इस घर में कैद होकर नहीं रह सकती। कल सुबह मै घर छोड़ कर जा रही हूँ।'

फुलबा अपना अंतिम फैसला सुना चुकी थी। अज़ीब बात है, उसे मालुम भी नहीं, कहाँ जाना है? कैसे जाना है? फिर भी जाने की जिद किये है।

मुझे लगा की अब यह मानने वाली नहीं है, इसलिये अपने स्वर्गवासी उस्ताद लोटन गुरु का दिया हुआ नुस्खा आजमाने की सोची। लोटन गुरु ने इस नुस्खे को खुद बनाया था। किसी औघड़ गुनिया या बाबा-जोगी का पैर दबाकर हासिल नहीं किए थे। इस नुस्खे की खासियत है कि जिस पर आजमाया जाता है, उसका और आजमाने वाले दोनों का भला होता है। ये नुस्खा उन्होंने मरने के एक दिन पहले मुझे बताया था और हिदायत दी थी कि बेटा! इस नुस्खे का इस्तेमाल बहुत सोच-विचार कर घर में ही करना,

घर से बाहर इसका प्रयोग वर्जित है।

नुस्खे के निर्देश अनुसार सुबह 4 बजे से ही मै देहरी में कम्बल ओढ़कर पसर गया, जहाँ से होकर फुलबा को बाहर निकलना था। आधे घण्टे के इंतज़ार के बाद कल की उतारी वही मैली फ्रॉक पहने ऊपर से एक मैली, मोटी-सी चादर डाले फुलबा आयी और मुझे देहरी में पड़ा देखकर पूछी---'इधर क्यों पड़े हो?'

'अगर तू घर से गयी तो मैं भी जान दे दूँगा।'

'वो कैसे?' बगैर विचलित हुये वह बोली।

'ये देख जहर की पुड़िया--- इसे खाकर मर जाऊँगा।'

मेरे हाथ से पुड़िया छुड़ाती हुई फुलबा बोली---'बाबू! ये तो लवणभास्कर चूर्ण है।'

'तुम्हें कैसे पता?'

'बाबू, कल रात मैं भी नही सोयी आप मुझे बहुत प्यार करते हैं। रात में आपको किचन में जाते और चूर्ण का पुड़िया बनाते हुये देखी थी। आप उठ जाइये, मैं अब नहीं जा रही। जब आप कहेंगे तभी छपने को जाऊंगी।'

मैं ख़ुशी के मारे उछल पड़ा, मुँह से अनायास निकल गया---'लोटन गुरु जिंदाबाद---लोटन गुरु अमर रहे।'

फुलबा को लगा, मैं ख़ुशी से पागल हो गया हूँ। वह दौड़ी-दौड़ी किचन में गई और एक बाल्टी पानी मेरे सर में उड़ेल दी।

'अरी फुलबा, ये क्या किया। मार डाला ठण्ड में। सब कपड़े गीले हो

 गए, अब कल क्या पहनूँगा?'

'माफ़ कर दो बाबू! मै समझी तुम पागल हो गये हो। लोटन गुरू जिंदाबाद कहकर उछल रहे थे।'

"सत्यानाश हो तेरा, पागल हों मेरे दुश्मन। मैं अपने उस्ताद का थैंक्स कर रहा था।'

इसी तरह तारीखें आगे सरक रही थीं। फुलबा के छपने-छपाने की ख्वाइश अभी तक पूरी नहीं कर पाया था। इस विषय पर फुलबा अब बोलती भी नहीं थी। लेकिन मेरी फ़िक्र कम होने की बजाय हनुमान की पूँछ की तरह बढ़ रही थी। अतः फ़िक्र निवारण के लिए मै अपने साहित्यिक मित्र 'रसिक' जी के घर अचानक चला गया। उस दिन छुट्टी का दिन था।

आज से तीस साल पहले आदमी के पास अबकी तरह मोबाइल फोन नहीं होते थे कि आदमी बताकर या परमीशन लेकर मिलने को जाये। उस समय जब जिसका मन हुआ घोड़े की तरह मुँह उठाये चला जाता था। कोई बुरा भी नहीं मानता था, शायद छिपाने लायक किसी के पास कुछ होता भी नही था। बाहर-भीतर एक जैसा। आज यदि बिना पूर्व अनुमति के किसी के घर चले जायें तो प्रथमतः वे पत्नी या बच्चो से कहला देगें की बोल दो साहब घर में नहीं हैं या धोखे से घर के बाहर चड्डी पहने मिल गये तो ऐसी नाराज़गी जताएंगे जैसे हम उनकी चड्डी उतारने आये हों। उनके घर बिना फोन किये चले आना उनका अपमान हो गया। बात ज्यादा बढ़ी तो सर फूटने का चांस बनता है।

रसिक जी अपने कमरे के बाहर जूट की बोरी में बैठे हुये मिल गये। कमर तक सिर्फ धोती लपेटे हुये बड़े शुकून के साथ बीड़ी पी रहे थे। वे निहायत दुबली पतली काया के मालिक थे।उनकी एक-एक हड्डी गिनी जा सकती थी। ऐसा लगता था भगवान इनको बनाते समय मांस की परत चढ़ाना भूल गया है। इनकी हड्डियों में रस ही रस भरा था। वे जब बोलते थे तो नवों रस की बरसात करते थे। वे मुझे देखते ही बीड़ी बुझाते हुये उठ खड़े हुये और

आँखों में नेह भरकर बोले---'लम्बी उमर है तुम्हारी, अभी बीड़ी पीते हुये तुम्हारे बारे में सोच ही रहा था कि तुम आ गये। बहुत दिनों से दिखे नहीं। घर में घुसे-घुसे क्या कर रहे थे?

'महोदय, मुझसे एक कहानी हो गई है। (रसिक जी मुझसे उम्र में बीस साल के बड़े होंगे। इस लिहाज से मै उनकी बहुत अदब करता था।)

'ये तो बड़ी खुशी की बात है, दिखाओ।'

'मन के भीतर है।'

'तो सुनाओ।'

रसिक जी बड़े धैर्य के साथ सब सुनते रहे, फिर अपनी बायीं आँख मलकर बोले---'भई अनुज, जब तुम्हारे भीतर कहानी उतर आई है तो पहले इसे कागज में साफ-साफ लिख डालो। फिर छपने के लिये किसी पत्रिका में भेज दो। शायद किसी को कहानी जम जाये और छाप दे। न भी छापे तब भी कोई हर्ज नहीं, तुम्हें मलाल तो नहीं रहेगा कि भेजा नही।'

'जी महोदय, आप ठीक कह रहे हैं, आपका परामर्श उचित है।" मैंने आदर से कहा।

'भई! एक बात बताओ---मैंने सुना है तुम अकेले में बातें करते रहते हो, साफ-साफ बताओ क्या चक्कर है, किससे बात करते हो?"

'जी पूज्यवर! लोगों को ऐसा लगता होगा। मैं फुलबा से बात करता हूँ और वह भी मुझसे बोलती-बतियाती है। साथ में उठती-बैठती है, यहाँ तक की हम दोनों एक ही चारपाई में साथ-साथ सोते है।'

'अरे अनुज! यथार्थ में जीना सीखो---कल्पना में नहीं, वरना पागल हो जाओगे भाई।'

'महोदय, मैं अपनी फुलबा से बात करता हूँ। किसी गैर से तो नहीं। मैं उससे बहुत प्यार करता हूँ, वह भी मुझसे। उसके बिना मैं रह नहीं सकता। आप बहुत बड़े साहित्य मर्मज्ञ हैं ---बताइये, कोई भी रचना यदि किसी ने पूरी ईमानदारी से तैयार की है, तो वह रचना, रचनाकार के लिए संतान की तरह प्यारी होगी न। उससे बातचीत करना क्या पागलपन है?'

'भई! तुम्हारे जज्बे की कद्र करता हूँ। लेकिन कहानी कही और लिखी जाती है। उसे अपने भीतरी जीवन का हिस्सा बनाना पागलपन है। मेरी राय है कि फुलबा को लिखकर प्रकाशनार्थ भेज दो।'

'जी ठीक है। मैं फुलबा को प्रकाशन हेतु भेजने को तैयार हूँ।

बस थोड़ी ठण्ड कम हो जाये और महीने की वेतन आ जाये तो एक गरम स्वीटर उसके लिये खरीद दूँ।'

'अरे, फुलबा कोई हाड़-मांस की नहीं बनी है। जिसे कपड़े सिलवा रहे हो। फुलबा एक कहानी है जो तुम्हारे भीतर उतरी है। उसे पहले कागज में उतारो। ये सच है फुलबा जीवंत कहानी है। उसे पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशन को शीघ्र भेज दो, समझे। वे थोड़ा तल्ख होकर बोले।'

'ठीक है, जाता हूँ।' मैं उठते हुये बोला।

'अभी ठहरो। वे बीड़ी जलाते हुये बोले। फिर चित्रसेन को आवाज देकर बोले---'एक लोटा पानी लाना।'

मेरी समझ में नहीं आया कि रसिक जी एक लोटा पानी का क्या करेंगे। वे मेरी परेशानी ताड़ गये और मेरी ओर देखकर बोले---'कल से पेट खराब है।कई बार जा चुका हूँ। अभी थोड़ा और रुको बहुत दिनों बाद आये हो।'

'महोदय, आपके पेट में तकलीफ है। पेट की तकलीफ खतरनाक होती है। इसे गम्भीरता से लें और आराम करें। मै दो चार दिन बाद फिर आ जाऊँगा।'

तब तक रसिक जी लोटा लेकर तालाब की मेड़ तरफ दौड़ लगा चुके थे। मैं भी बैठ गया। उनकी अनुमति लेकर ही वापस जाना उचित समझा।

रसिक जी जब दस मिनट बाद वापस आये तो पीड़ा के भाव चेहरे पर

साफ साफ झलक रहे थे, उन्हें देखकर मुझे तकलीफ हुई। आखिर आज ही क्यों चला आया? दो दिन बाद आ जाता तो क्या बिगड़ जाता? फिर जिज्ञासु मन के कोने में एक सवाल उठा कि रसिक जी का पेट क्यों और कैसे गड़बड़ हो गया? ये तो कहीं आते-जाते नहीं। घर में आदमी सम्हलकर खाता है, बाहर जरूर अनियंत्रित हो जाता है। मुफ्त का भोजन रोज-

रोज थोड़ी मिलता है। इसका अर्थ यह हुआ कि रसिक जी रस बरसाने कहीं बाहर गये थे। मुझसे रहा नहीं गया---मैंने पूछ ही लिया---'पूज्यवर, आपका पेट कैसे खराब हुआ?'

'अरे भाई! कल ही तो लौटा हूँ, लाल किले से---विराट कवि सम्मेलन था।विराट तो समझते ही होंगे?'

'नहीं।' मैंने कहा।

'विराट का मतलब बहुत बड़ा।'

सर हिलाकर मैंने समझने की मंजूरी दे दी।

'भई! वहाँ जो सत्कार हुआ, वह भी विराट था समझ लो अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता। खाने-पीने का खासा इंतज़ाम किया था, उन लोगो ने।

'लेकिन आप तो पीते नहीं?" मैंने उत्सुकता से पूछा।

'हाँ भई, यहीँ चूक हो गई। वे सब गिलास पे गिलास खाली कर रहे थे और मैं कोने में बैठा बीड़ी फूंक रहा था। जब कार्यक्रम शुरू हुआ उस समय रात के दस बज रहे थे। वे सभी एक-एक करके कविताओ के हंसगोले दाग रहे थे। पब्लिक भी बहुत समझदार थी, वे भी ताली बजा-बजा कर उन्हें जोश पर जोश दिला रही थी।"

'फिर क्या हुआ?'

'जब मेरा नम्बर आया तब रात के बारह बज रहे थे। रात करवट ले चुकी थी। श्रोता घर जाने के लिये उठने लगे थे। तभी संचालक महोदय ने आकाशवाणी करी, 'कृपया! ठहरिए, रसिक जी को सुनते जाइये।'

'फिर।'

'लोगों के जाने का सिलसिला रुका नहीं। मैंने पूरे जोश के साथ सृंगार रस पगा मुक्तक बाण चलाया लेकिन वह भी सरकारी योजनाओं की तरह फुस्सी मार गया। लोग रुके नहीं, आखिर बंदर छाप बीड़ी पीने वाला कवि किसे जाने से रोक सकता था?'

'फिर ....।'

'फिर क्या? वे सब चले गये। मैं बैठ गया। इधर आयोजकों और मंच संचालक जी के बीच तीखी नोक- झोंक हो गई। आयोजकों का कहना था, रसिक को भेजकर आपने गलती की। आपको होशंगाबाद से पधारे हास्यकवि 'बेहोश' को भेजना था।संचालक भी चढ़ाये हुये थे वे पूरे रंग में आकर बोले---'बेहोश को जब होश हो, तब न भेजें।'

'आपकी तौहीन हुई।'

'तभी से तो मेरा पेट खराब है। रही-सही कसर पूरी कर दी उस बड़े होटल के टॉयलेट ने।

'टॉयलेट ने, वो कैसे?' मेरे अचरज़ का ठिकाना नही था।

'हाँ भई, मैं देहाती आदमी इतना साफ-सुधरा कमरा कभी देखा नहीं था। उस पर भी उसमें लगी मशीनें---कोई पानी निकाल रही थी, कोई हवा निकाल रही थी। मेरे तो होश उड़ गये। बहुत नर्वस महसूस कर रहा था। फिर भी मरता क्या न करता। अब तो हम तय कर लिये हैं---कहीं जायेंगे तो रहना-खाना मेरी स्टाइल का चलेगा। यह शर्त पहले रहेगी। भले ही उसकी एवज में लिफाफा छोड़ देंगे। अब कल से जो भी खाता हूँ, ठीक से पच नहीं रहा है।

खैर तुम मेरी चिंता मत करो। स्थिति अंडर कंट्रोल है।'

मैं रसिक जी से अनुमति लेकर घर आया, मुझे एकांत में पाते ही फुलबा पूछ बैठी---'बाबू, किधर बैठ गये थे?'

'बस यूँ ही।'

'देखो, झूठ मत बोलो मुझे सब पता है। रसिक जी के साथ बहुत गलत हुआ है, अब मैंने भी तय कर लिया है।'

'क्या तय कर लिया तुमने?" आश्चर्य से मैंने पूछा।

'आपको छोड़कर अब कहीं नहीं जाऊँगी---क़सम खाती हूँ।'

मै इतनी बड़ी खुशी सहेज नहीँ पाया, स्वयं से लिपटकर रोने लगा।

आज जुदा होने का गम नहीं था। आज तो.सिर्फ मिलन के आँसू थे।

स्वयं का स्वयं में विलोपन का अद्भुत आनन्द----।

*****

लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा। प्रकाशक तथा संपादक : सुधेन्दु ओझा, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली110092

यह न पूछो

यह न पूछो
भेजते प्रतिमाह रुपये,
तुम उसे क्यों ?
शहर का खर्चा बहुत है |

आत्म-गौरव, आत्मग्राही,
आत्मघाती हो न जाए,
वह कदर्थित,
कल्पनाओं के गगन में,
वह कहीं पर खो न जाए,
हो अनर्जित,
सभ्यता बिगड़ी हुई है,
आजकल चर्चा बहुत है |

अब निषेधों ने समय का,
रूप अपना बदल डाला,
हो समर्पित,
जिसे रोका, वही करने
का सहज सिद्धांत पाला,
हुआ चर्चित,
मोड़ पर विज्ञापनों का,
है टँगा पर्चा बहुत है |

धर्म के उज्जैन में कुछ,
ज्ञानवापी जो बने हैं,
पुष्प अर्पित,
हर जगह ही मंदिरों पर,
बिजलियों सँग घन घने हैं,
चिर समर्थित,
हर सड़क, हर ओर ही तो,
शिवों की अर्चा बहुत है |

शिवानन्द सिंह 'सहयोगी'

डॉ पुष्पा जोशी

गंगा की गुहार

रक्ष माम्.....रक्ष माम्
हो कहाँ भगीरथ? कहाँ हो??
तब तारे थे पुरखे तुम्हारे
आज तारों मुझे.....
तब पुकारा था तुमने
आज गुहार रही हूँ
मैं
सींचा है मन-आँगन
खेत-खलिहान तुम्हारा
दिया है अभय-दान
नष्ट किया पापों को
बन मोक्षदायिनी, पापनाशिनी
लेकिन तुम्हारे ये वंशज
उफ़!! वंशजों ने तो, तुम्हारे
उच्छिष्ट,अवशिष्ट डाल किया
मेरा अपमान.....
रे मानव! धिक्कार है तुझे
रे भगीरथ! धिक्कार है इन्हें
माँ कहकर माँ पर अत्याचार??
मैं माँ हूँ.....
तेरे जीवन की हाँ हूँ
देख! मुझे निर्मल कर
जीवन का सम्बल कर
भूत दिया हूँ,भविष्य भी दे जाउँगी
इतना ही तुझसे हित चाहूँगी
शिवतत्व को मेरे
शवत्व में न बदल
वरना हे मानव!!
फिर कमण्डल में समा जाउंगी
ब्रम्ह कमण्डल में समा जाउंगी

भिक्षाटन

बुद्धम् शरणम् गच्छामि.....
बुद्धम् शरणम् गच्छामि.....
घोष पढ रहा मेरे कानों में
उद्घोष करते अनुयायी मेरे
मुझमें ईश्वरत्व देखने लगे हैं
पर मैं???
बारह वर्ष पूर्व छोडा था.....
राहुल को, यशोधरा को, घर को....
कैसा होगा, कैसी होगी, कैसे होंगे?
मन मचल है दर्शन को
कितना बडा होगा,कितना पढा होगा??
क्या नगर घूमता होगा??
या मेरे समान, भीतर महल के???
हाँ,हाँ कारावास में...
महलनुमा कारावास...सोने का पिंजरा....
नही समझ आता
जाता हूँ कपिलवस्तु क्यों?
क्या छोडा जो, बटोरना है..
मुक्ति- मार्ग मिला....
हाँ! यही वह बरगद
जहाँ गृहस्थ को छोडा था
सन्यासी बन नियम तो अपनाना है
बारह वर्षों बाद भिक्षाटन को जाना है
परीक्षा की इस घडी में
खरा उतरना होगा
गृहस्थों में पहुँचकर कर भी
आलिंगन न करना होगा...
सम्बंधों की गाँठों को पूरी खोल आऊँगा
बधाँ नही कोई मुझसे
समझा आऊँगा
ज्ञान मंत्र , मान मंत्र
उन्हें भी दे आऊँगा
बुद्धम् शरणम् गच्छामि का घोष..
फिर तीव्र हुआ....
बुद्धम् शरणम्.....
मैं फिर अग्रसर हुआ
मुक्तिपथ के लिए
भिक्षाटन के लिए
भिक्षाटन के लिए

प्रद्युम्न कुमार सिंह

चार पायें

मखदूमपुर नाम का एक गाँव था। जहाँ के लोग मेहनती एवं ईमानदार थे। यद्यपि इस गाँव में विभिन्न जातियों के लोग रहते थे। किन्तु ठाकुर और बाभन जाति का प्रभुत्व सर्वाधिक था। ठाकुर जाति के पास खेती थी दबंगई थी अतः उनके लड़के बहुत से ऐसे वैसे कार्य करते थे। जबकि बाभन जाति के पास अपने तरीके थे। जिनके द्वारा वे अपना वर्चस्व बनाये हुए थे। तीसरी जाति वैश्य थी जिसके पास पैसा तो था किन्तु घरों में पर्याप्त समय नहीं दे पाते थे क्योंकि उनका ज्यादातर समय अपने व्यापार में ही बीत जाता था। वही अन्य जातियाँ की स्थिति लगभग भूमिहीनों जैसी थी ओर वे मेहनत मंजूरी करके किसी तरह से अपना जीवन यापन करती थीं। हाँ अहीर जाति के लोग जरूर थोड़ा सबल थे। उसका कारण भी था वे गाय,भैस पालते थे। शुद्ध ताजा दूध,दही,घी,मक्खन तथा छाछ खाते थे और अखाड़ा लड़ते थे। तो स्वाभाविक सी बात है उनका शरीर भी हृष्ट पुष्ट व बलिष्ट होगा। इसलिए वे किसी को भजते नहीं थे। जब कभी ठाकुरों और बाभनों के लड़के उनसे छिछोरी हरकतें करते वे उन्हे पहेटकर मारते थे। इस प्रकार ठाकुरों और बाभनों के साथ अहीरों का हमेशा कुछ न कुछ होता ही रहता था।

ठाकुरों व बाभनों का आतंक मखदूमपुर की अन्य जातियों के लोगों में हमेशा बना रहता था। अहीरों के अलावा अन्य जातियाँ उनकी छिछोरी हरकतों से आजिज आ चुकीं थी। तो कुछ घर बार छोड़कर पलायन को मज़बूर थे। खासतौर पर जिनके घर सुन्दर होत थे। ठाकुर और बाभन के लड़के उन घरों को अपना निशाना बनाया करते थे। इसी प्रकार का एक व्यापारियों का परिवार था जिसकी गाँव में काफी प्रतिष्ठा थी। ठाकुरों और बाभनों के आतंक से आतंकित होकर वह मखदूमपुर गाँव को छोड़कर मकरापुर शहर में जा बसा। घर का मुखिया मयंक भारती एल०एल०बी०किये हुए था अतः उसने मकरापुर के जिला न्यायालय में वकालत करना आरम्भ कर दिया। लेकिन कहते हैं न सभी को हर चीज नसीब नहीं हुआ करती है। अतः मयंक भारती की भी वकालत बहुत अधिक नहीं चल सकी। अब उनका रुझान साहित्य की ओर गया यद्यपि उसने अपने साहित्य लेखन का सफ़र दोहे सवैये से शुरू करते हुए कविता के विविध पहलुओं से होता हुआ आगे बढ़ा। जिसे पूरी मजबूती देने का आधार चार पायों का आसन बना। मयंक भारती में एक ऐसा विशेष गुण था जिसके कारण लोग उसके भक्त बन जाते थे। उसका यही सम्मोहन ने मकरापुर शहर के कई नामी गिरामी लोगों को उसके पास लाकर खड़ा कर दिया। किन्तु उसे इससे सन्तुष्टि नहीं मिल सकी तो उसने चार ऐसे लोगों की तलाश की जो पूरा दिन व्यस्त रहते हो और दिन भर की चिल्ल पो तथा किच-किच से दूर कुछ क्षण शान्ति में बिताना चाहते हो। जल्द ही मयंक भारती की यह तलाश पूरी हुई और उन्हे केन्द्रीय सेवा में लगे हुए विभिन्न विभागों के चार बड़े अधिकारी किन्तु निहायत कर्मठ एवं संस्कारवान लोग मिल गये। ये चारों अपने अपने क्षेत्र के जाने माने विद्वान के अतिरिक्त साहित्यिक अभिरुचि के व्यक्ति भी थे।

समय बीतता रहा और समय के साथ साथ संगतियां भी बदलती रहीं। इन्ही के साथ चाटुकारिता के एक ऐसे युग की शुरुआत भी हो गई। जिसका कर्ता धर्ता एवं मुखिया जाला पण्डित था। चाटुकारों की जमात में मलुहा पहलवान, बरकत खान, चम्पाकली, सूरन महकवाला ननुहा मित्रा, मान सिंह टीकावाला जैसे बहुत से लोग थे। यह जमात दिनों दिन अपनी संख्या में इजाफा करती जा रही थी। और अब इस संगति ने अब अपना असर भी दिखाना आरम्भ कर दिया था और आसन के जो मजबूत आधार थे वह उन्ही आधारों पर चोट करना आरम्भ कर दिया। जिन्हे साहित्य का अच्छा ज्ञान था और अपना जीवन साहित्य और मयंक भारती को समर्पित कर चुके थे। यहाँ तक की दोहे सवैये लिखने वाले मयंक भारती को शिखर की ऊँचाइयों तक भी पहुंचाया था। आज उन्ही पायों के विरुद्ध हो रहे षड़यन्त्रों को देखकर भी मयंक भारती की जबान से एक भी शब्द नहीं निकलता था। इस तरह से वह पाया जो सबसे अधिक मज़बूत था धीरे-धीरे ढ़हता चला गया और अन्त में ढह भी गया। मयंक भारती जानते और समझते हुए भी उसको संरक्षित करने के लिए कुछ भी नहीं कर सके उसका एक कारण भी था। यह पाया था मोहनदास चक्रधर। इधर जो यह नये चापलूसों का वर्ग

आया था उसने मयंक भारती के घर पर सेंध लगा ली थी जिसके कारण मयंक भारती पूरी तरह से मौनी बाबा बन हुए थे। वे जिस बीमारी से ग्रसित होकर अपना मखदूमपुर गाँव को छोड़कर मकरापुर शहर को अपना आश्रय स्थल बनाया था। उन्हे वहाँ भी उस बीमारी से निजात नहीं मिल सकी। वो कहते हैं न कि "जब अपना घर सुन्दर और चंचल हो तो दीवारे ऊँची होने के बावजूद सुरक्षित नहीं रह सकता" I मयंक भारती के साथ भी कुछ ऐसा ही हो रहा था। अब यह चकरघिन्नी वर्ग जो निहायत शातिर एवं धूर्त किसिम का था ने एक पावे के धराशायी होने के पश्चात दूसरे पावे की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। क्योंकि उसे मालूम था कि बिना दूसरे पाये के ध्वस्त किये मयंक भारती के नाम और सोहरत का पूर्णतया उपयोग नहीं किया जा सकता है। अतः जाला पण्डित पूरी ताकत के साथ वे इस पाये को नेस्तनाबूत करने के लिए योजनाबद्ध तरीके से कार्य करने लग गया था जिसके कारण बहुत जल्द ही यह दूसरा पाया भी ध्वस्त होने की कगार पर पहुँच गया। कुछ समय की उपेक्षा के पश्चात यह पाया भी ध्वस्त हो गया। यह पाया कोई और नहीं था बल्कि मसहूर गज़लकार इस्माइल खान थे। जो गज़ल विधा की व्याकरण के अच्छे जानकार थे लेकिन मयंक भारती की आँखे अब भी नहीं खुली। क्योंकि इन दुर्योधनों ने अन्धे धृतराष्ट्र की आँख को अब पूरी तरह से अंधा कर दिया था। इस अंधेपन को स्थाई रूप देने के लिए मकरापुर के यह तथाकथित साहित्यकार जी जान से जुड़ गये। अब बचा था तीसरा और चौथा पाया तो तीसरा पाया जो अच्छा गीतकार होने के साथ -साथ उच्चकोटि का कवि था उसने मंच की ओर अपना रुख किया क्योंकि किसी ने बहुत ठीक कहा है कि "जब सज्जनों की सभा दुर्जनों के समूह से भर जाये। तो चुप रहना ही बेहतर होता है "। अतः यह तीसरा पाया मौजूद तो रहा लेकिन अपनी ज्यादातर गतिविधियों को रोक दिया। यह पाया जक्खू प्रसाद था। जिसने इन गोष्ठियों से अपने आप को लगभग अलग ही कर लिया। इसका मतलब यह कतई नहीं निकालना चाहिए कि उसने साहित्य में हस्ताक्षेप करना छोड़ दिया। बल्कि अब उसने अपने फलक का विस्तार किया और मंचों का बड़ा गीतकार बनने के साथ कविता की मुख्यधारा का अग्रणी व्यक्ति बनकर उभरा। जिसके कारण चाण्डाल चौकड़ी की रातों की नींदें हराम हो गई लेकिन वह कर भी क्या सकते थे? सिवाय हाथ मलने के सो मलते रहे। खैर बचा चौथा पाया तो उसे चापलूसों ने अपनी ओर मिला लेने में ही अपनी भलाई समझी। वह भी उनके साथ अपनी सहभागिता करने लगा लेकिन कभी भी वह उनसे सहमत नहीं हो सका। जब वह इनके कार्यों से ऊब जाता या फिर घुटन महसूस करने लगता तो वह तीसरे पाये से चाय पीने के बहाने मकरापुर शहर के सूदूर मनसुख चौराहे पर छेद्दा हलवाई की दूकान में मिलता। चर्चाओं का लम्बा दौर चलता। इस दौरान कई प्याले चाय खप जाती थी। तब जाकर सन्तुष्टि का भाव चेहरे पर आ पाता। यह चौथा पाया था खोरचन्द्र पालीवाल। जो अपने नाम के अनुसार ही जीवन पर्यन्त साहित्य के क्षेत्र में योगदान देता रहा किन्तु कभी भी अपना संग्रह तक नहीं ला सका। इस प्रकार जो आसन जिम्मेदार सरकारी अफसरों के अपने चार मज़बूत पायों पर टिका था। वह अपनी ही कमजोरी से धीरे धीरे अपने वजूद को खोता चला गया। आज वही चापलूस और धूर्तों का सरदार जाला पण्डित अयोग्य होने के बावजूद मयंक भारती के नाम को सर्वत्र भुना रहा हैं जबकि मयंक भारती का चार पाये का आसन क्षण प्रतिक्षण विध्वंस के कगार की ओर बढ़ता जा रहा है। क्योंकि आज भी षड़यन्त्रकारी जाला पण्डित अपने विध्वंसक इरादों को अमलीजामा पहनाकर चार पाये में टिके आसन के तीन पायों को पूर्णतयः नेस्तनाबूत कर चुका था। अब वह शेष बच गये तीसरे पाये जक्खू प्रसाद को ढहाने के प्रयास में उसने अपनी पूरी ताकत झोक दिया था। क्योंकि वह जानता था यह मज़बूत पाया कभी भी उसके लिए खतरे का सबब बन सकता है।

किसी आसन को थामे रहने के लिए यद्यपि चार पायों का होना आवश्यक होता है यदि उनमे से तीन पाये धराशायी हो जाये तो चौथा मज़बूत हो के बाद भी प्रभावी रूप से आसन को थाम पाने में असमर्थ होता है इसके बावजूद यह अवशेष पाया अपनी पूरी क्षमता के साथ आज भी अपने पाये होने के दायित्व का निर्वहन कर रहा है और जाला पण्डित के जाल से आसन को बचाने का भरसक प्रयास करता हुआ नज़र आ रहा है।

सृष्टि मिश्रा

लोकगीत

सुमिरन करूँ आज भवानी का
सुमिरन करूँ
सुमिरन करूँ आज भवानी का
सुमिरन करूँ

पहला सुमिरन गणपति जी का
रिद्धि सिद्धि महारानी का सुमिरन करूँ
सुमिरन करूँ आज भवानी का
सुमिरन करूँ

दूसरा सुमिरन भोले नाथ का
गौरा जी महारानी का
सुमिरन करूँ
सुमिरन करूँ आज भवानी का
सुमिरन करूँ

तीसरा सुमिरन राजा राम का
सीता जी महारानी का
सुमिरन करूँ
सुमिरन करूँ आज भवानी का
सुमिरन करूँ

चौथा सुमिरन कृष्ण चंद्र का
राधा जी महारानी का
सुमिरन करूँ
सुमिरन करूँ आज भवानी का
सुमिरन करूँ

पाँचवा सुमिरन गुरु अपने का
गुरुआई अपनाने का
सुमिरन करूँ
सुमिरन करूँ आज भवानी का
सुमिरन करूँ

गीत

सांझ ढली और ,मन में टिमटिमाये तारे।

चौखट से चन्द्र किरणें भी तुम्हें पुकारे।

सांझ ढली.....

बेला की महक श्वासें गुदगुदाऐ ऐसे

तितली को देख दुहिता खिलखिलाए

जैसे।

सोलह श्रृंगार करके खिली दमकी रजनी।

प्रीतम को मिलने को हुई विकल सजनी।

बांट सजी रात बहकी नेह में तुम्हारे।

चौखट से चन्द्र किरणें भी तुम्हें पुकारे।

चहक उठा मन अंगना कोयल की कूक

से।

शीतल धरती हुई ज्यों तपती सी धूप से।

हौले हौले घन फिर धरा चूमने लगे।

देह सदन तृप्त हुआ,मयूर झूमने लगे

कैसे नव किसलय सी खिल उठीं दीवारें ।

चौखट से चन्द्र किरणें भी तुम्हें पुकारे।

तरिनी इतरा रही भाल चन्द्रमा पहन

विचलित तट कंपित है देख नीर का

वहन

तारों की जगमग को केश में सजा रही।

अंबर की प्रेमिका, प्रेम सुखद पा रही।

लोचन अविराम, ऐसे दृश्य को निहारे।

चौखट से चन्द्र किरणें भी तुम्हें पुकारे

मनीषा जोशी मनी

ललित प्रताप सिंह

मेरे पापा

दर्द कभी जाहिर होने नही देते
चोट में भी वो मुझे रोने नही देते!

सब उठाया करते हैं फायदे मेरे
घाटा मेरा कभी वो होने नही देते!

हरदम कर बैठता हूं गुस्ताखी कोई
मगर वो शर्मिंदा कभी होने नही देते!

जिद के आगे छुक जाते है वो मेरी
मुझे गलत साबित वो होने नही देते!

हर सवाल का है जवाब उनके पास
जुदा खुद से कभी वो होने नही देते!

दूरियाँ बनेगी कभी कैसे हमारे बीच में
वो पापा है मेरे पाप कभी होने नही देते!

'राह बनाते नही'

इन दिनों
फिक्र खुद की
बहुत कम करते हो,
ये बताओ?
सुबह से शाम तक
क्यूं मायूस से रहते हो!

बात है अगर
कोई दिल में तो
क्यूं किसी को बताते नही,
घुट घुट कर
जीते हो आजकल
क्यूं रंग जीवन में लाते नही!

माना कि
दुशवार है जीना
पर क्यूं
दुश्मनों से लड़ जाते नही,
कर नही सकते वो कुछ तुम्हारा
क्यूं खुद में विश्वास जगाते नहीं!

आयेगी
बस मौत ही ज्यादा
क्यूं मरकर
भी अमर हो जाते नहीं,
याद करेगें तुमको सारे
क्यूं तुम अपनी राह बनाते नहीं!

सिद्धेश्वर की लघुकथाएँ

(01) जंगल

दूरदर्शन के केंद्र निदेशक सुलभ अपने साहित्यिक मित्रों के साथ ऑफिस में बैठे, इधर -उधर की बातें बतिया रहे थे ! सुलभ राष्ट्रीय स्तर के चर्चित कथाकार थे l

बाहर जोर की बारिश हो रही थी l सुलभ को थोड़ा चिंतित देखकर,उसके मित्र शरद ने चुटकी ली-

"क्या बात है? भाभी की याद सता रही है क्या? या फिर दूरदर्शन की उदघोषिका मीना गुप्ता की.....? "

"नहीं यार !दरअसल मेरी बेटी कान्वेंट में पढ़ती है !बस से आती -जाती है !कभी-कभी बस में थोड़ा भी विलंब हो जाता है, तब मेरी "वाइफ चिंतित हो उठती है !.....और मुझे फुर्सत नहीं मिल पाती, कि बेटी को स्कूल तक छोड़ आऊं ?!.....! "

"एक उपाय है ! - " - मित्रों में से एक ने कहा।

"क्या ...? " - उत्सुकता वश सुलभ ने पूछा !

"स्कूल के पास ही मकान बनवा लो ! फिर भाभी बच्चों को स्कूल तक छोड़ आया करेगी l"

"अरे यार मकान बनवाने की क्या जरूरत है ? अपनी पुश्तैनी जमीन -जायदाद बेचकर, एक कार खरीद लो, तो यह समस्या तो चुटकी में हल हो जाएगी l भाभी ड्राइविंग सीख लेगी और बच्ची को.....! "

मित्रों की बातें सुनकर सुलभ मुस्कुराते हुए बोला -

"पुश्तैनी जमीन जायदाद बेचने की क्या जरूरत है ? अभी मेरी इतनी अधिक उम्र नहीं हुई है कि दूसरी शादी न हो सके !....."- थोड़ा रुक कर फिर वह आगे बोला-

... "दूसरी शादी करूंगा तो तय है, मेरी पद-प्रतिष्ठा देखकर, दहेज में चार पहिया यानी कार तो आसानी से मिल ही जाएगी, दहेज में ! कार देने से भला कौन पीछे हटेगा? "

..... मगर, यार!..... भाभी ! तुम्हारी सरकारी नौकरी ..... !! ... फिर साहित्यिक सर्कल.. !! बात जमी नहीं l....वैसे मित्र, ये जीवन तुम्हारा है !..."- .एक ने कहा।

इतना कहकर धीरे-धीरे सब खिसकने लगे। सुलभ अब अकेला था !!!

000

(02) रिश्ते का वायरस

" देखने में तो पढ़े-लिखे अच्छे परिवार के लगते हो भाई ? आखिर, इस आपदा में दो जून की रोटी की जुगाड़ तुम लोग कैसे नहीं कर पा रहे हो ?

..... तुम्हारी कोई औलाद नहीं है क्या ? "

" दो बेटे हैं साहब ! एक मुंबई में डॉक्टर है और दूसरा अमेरिका में इंजीनियर ! एक बेटी थी, मगर दो साल पहले उसका भी स्वर्गवास हो गया ! "

" तुम्हारे दोनों बेटे तो अच्छी पोस्ट पर है ! उनके पास क्यों नहीं चले जाते ? "

" अलबत्ता तो वे दोनों पूछते ही नहीं l कहते हैं तुम दो प्राणियों के लिए तुम्हारी पेंशन ही काफी है l "

" पेंशन ? पेंशन से तो दो प्राणियों के अन्न -दाना का जुगाड़ बढ़िया से हो सकता है, भाई !"

" एक साल से दौड़ रहा हूं। अब तक पेंशन का कागज पक्का नहीं हुआ है l प्राइवेट कंपनी की पेंशन इतनी आसानी से मिल जाती है क्या बाबू ? कोई विश्वास नहीं करता !दोनों बेटों को भी लगता है कि हम झूठ बोल रहे हैं ! "

" फिर साल भर से खा -पी कैसे रहे हो ? किराए के मकान में कैसे रह रहे हो ? "

" मेरी पत्नी पढ़ी -लिखी है साहब ! मोहल्ले के एक स्कूल में ही मास्टरनी है l उसकी कमाई से ही दोनों का गुजारा किसी तरह हो जाता है ! "

".... लेकिन पिछले एक महीने से जो उसने बिस्तर पकड़ लिया है, तो उठने का नाम ही नहीं ले रही l दवा- दारू में ही सारी जमा पूंजी खत्म हो गई बाबू ! उस पर अचानक कोरोना वायरस महामारी की आफत !.....

..... स्कूल कॉलेज कल कारखाने सब बंद ! दवा- दारू तो दूर, दो टाइम का अन्न भी नहीं जुटा पा रहे है बाबू l किसी से कुछ मांगने में भी शर्म आ रही है l... "- थोड़ा संकोच करते हुए उसने, फिर आगे बोला-

".... कुछ दिनों तक तो मकान मालिक ही खिलाता- पिलाता रहा ! अंत में, उसने भी हाथ खींच लिया और साफ-साफ सुना दिया कि सरकार ने कहा है, तो एक महीने का किराया माफ कर देते हैं l लेकिन, खाने-पीने का इंतजाम हम कब तक करेंगे भाई ? अपने

बेटों से पैसा मंगवा लो ! "

" साहब तीन दिन से फोन कर रहा हूं, दोनों बेटों के पास ! मगर, दोनों फोन उठा नहीं रहे हैं। जब मरने की नौबत आ गई है, तब लाचार होकर आपको फोन लगाया, मैंने ! वह भी अखबार में थाने का नंबर देखकर ! "

" तुमने ठीक किया विमल दा...! घोर कलयुग है, कलयुग ! जिस बेटे को पढ़ा-लिखा कर कमाने लायक बनाया तूने, उसने ऐसी मुसीबत में भी तेरी सुध नहीं ली ?..... "

" ... घोर कलयुग है भाई घोर कलयुग ! आजकल शादी होते ही और घर में बहू आते ही, ना जाने कौन-सा जादू चल जाता है भाई ?..... "

" चलो कोई बात नहीं ! ये लोग हमें ही गालियां देते हैं, सरकार को गालियां देते हैं, मगर अपने गिरेबान में कभी नहीं झांकते ? "- दु:ख प्रकट करते हुए और उसे सांत्वना देते हुए, पुलिस ऑफिसर ने आगे कहा -

"डूबते को तिनके का सहारा ही बहुत होता है भाई ! मैं अभी एक घंटे के अंदर तुम्हारे खाने -पीने के लिए, महीने भर कर राशन का इंतजार कर देता हूं सरकार की तरफ से !लेकिन, इसके लिए इस कागज पर साइन कर दो और अपने दोनों बेटों का नाम भी बतला दो l ताकि अखबार में इस समाचार के साथ, उन दोनों का नाम भी रोशन हो जाए... ! "

अपनी आंखों के आंसू पोंछते हुए और हाथ जोड़ते हुए, विनती करने लगा विमल दा -

"हुजूर, आप सरकारी सहयोग दे रहे हैं, तो पूरी जिंदगी आपके कृतज्ञ रहेंगे हम ! लेकिन, अपने जिगर के टुकड़े, दोनों बेटों का नाम हम नहीं बताएंगे आपको !अखबार में,हमारे उन दोनों बेटों का नाम छपेगा, तब नाम रौशन होगा कि मेरे ही दिल का टुकड़ा कलंकित होगा !?..... "- अपनी आंखों में पानी भरते हुए और याचना भाव लाते हुए वह आगे बोला-

"ना बाबा ना ! इस शर्त पर हम आपका सहयोग नहीं ले सकते ! रिश्ते का वायरस है हुजूर, कोरोना वायरस नहीं है ! कोरोना को भगाना है, लेकिन, रिश्तों को तो बचाना है हजूर ! रिश्तो को तो बचाना है...!!..."

000

(03) अस्मत खतरे में है !

दशहरे का पर्व उत्साह के साथ मनाया जा रहा था l एक तरफ मां दुर्गे की प्रतिमा का भव्य आकर्षण था और दूसरी तरफ पूजामय वातावरण की गूंज !

इस अवसर पर गली-मोहल्ले के आवारा किस्म के छोकरों की पौ-बारह थी l दुर्गे प्रतिमा से लेकर, साज -बाजे, पंडाल, झाड़ बत्ती तक की व्यवस्था उन्होंने ही कर रखी थी lगुंडागर्दी के बदौलत मनमाना चंदा वसूल किया गया था !

एक तरफ मां दुर्गे की पूजा अर्चना हो रही थी, दूसरी तरफ पंडाल के पीछे से छोकरे लोग शराब-कबाब खा पीकर मस्त पड़े थे ! एक तरफ मां दुर्गे औरत के वेश में, प्रतिमा बनकर खड़ी थी l दूसरी तरफ रुपए के बल पर एक औरत की अस्मत लूटी जा रही थी !

नशे में धुत एक छोकरे ने अपने साथी से कहा -

"यार चख ले तू भी रमरतिया को l साली क्या चीज है ! ऐसा नशीला माल और गदराई जवानी का स्वाद नसीब से ही हाथ लगता है l "

रमरतिया की साड़ी और ब्लाउज उतारते हुए, उनके साथी ने अपने मित्र के समर्थन में कहा -

" तू ठीक कहता है यार ! "

सत्यम प्रतिमा को प्रणाम कर रहा था l उसी समय पंडाल के पीछे से उन छोकरों की फुसफुसाहट सुनकर,वह भीतर तक कांप उठा !.....

.....?.... एक आवाज बार-बार उसके भीतर गूंजती रही,

" मां दुर्गे, तू कब तक प्रतिमा बनकर खड़ी रहोगी ? नारी की अस्मत खतरे में है, माँ .... !!!"

000

(04) खुदगर्ज

" बहना, कुछ दिन पहले तक दिन भर में, दो -चार बार चारा मिल जाता था, खाने को ! अब तो एक शाम दाना पानी मिलता है, बस !.....

....क्या सारा चारा ग्वाला बाजार में बेचा जाता है? "

- खूंटे पर बंधी गाय ने, अपने बगल के खूंटे में बंधी गाय से पूछा l

" नहीं बहना ! ग्वाला बेचारा क्या करेगा ? हमारे हिस्से का चारा तो सरकारी अधिकारियों और नेताओं ने हड़प लिया है ! कहने को तो पढ़े-लिखे, ऊंची शिक्षा हासिल किए होते हैं ! किंतु, ये लोग तो अनपढ़ों से अधिक जाहिल लगते हैं l..... इनकी सारी शिक्षा दूसरे का हिस्सा पचाने के काम आती है l "

" तुम ठीक करती हो बहना !ये इंसान ---- बहुत खुदगर्ज होते हैं ! इंसानों का हिस्सा तो पचाते ही है, हमारे मुंह का दाना-पानी भी ? "

" शुक्र करो बहाना! एक शाम तो दूध मिल रहा है l क्योंकि उन्हें मेरा दूध चाहिए न ? इसी स्वार्थ में !.....

..... वरना इंसानों को जीते-जी मारने वाले ये शैतान भला हम जानवरों को, कब तक बख्सेंगे ? "

000

दिलीप कुमार सिंह

अच्छा आदमी

जीवन ने घड़ी देखी,दो बजकर बीस मिनट हो रहे थे। पौने तीन तक डायरेक्ट लखनऊ वाली बस छूट जानी थी । उसके बाद कई बसें बदलकर ही वो लखनऊ पहुँच सकता था। वक्त के बारे में सोच कर झुंझला उठा ।उसने ऑटो वाले को घुड़का -

"मेरी बस छुड़वा दोगे क्या ,जल्दी कर ना यार"

"सामने देखिये साहब, सिग्नल लाल है ।रेलवे का फाटक बंद है । दो गाड़ियों की क्रासिंग है ,इतना लंबा जाम है। फाटक खुल गया तो भी आधा घण्टा लगेगा निकलने में। उड़कर नहीं जा सकता साहब "

ऑटो वालो ने संयत स्वर में कहा।

"फिर तो पक्का बस छूटेगी मेरी,यही एक सीधी बस है लखनऊ की ।अब क्या हो सकता है "जीवन ने हताश स्वर में कहा।

"एक काम करिये साहब , आप ऑटो छोड़िये।पैदल क्रासिंग पार कर जाइये। क्रासिंग के बगल में मंदिर से लगा हुआ पीछे से एक रास्ता है । उस मोहल्ले के खत्म होते ही सोना मोड़ पर कुछ ऑटो मिल जाएंगे जो आपको तत्काल बस अड्डे पर पहुंचा देंगे। लेकिन एक बात है साहब ,उस मोहल्ले से सम्भल कर गुज़रियेगा। सूटकेस,गले की चेन की छिनैती हो सकती है ,थोड़ा सावधान रहिएगा साहब ।उधर एक नेशनल बेकरी है उसके पास ही एक -दो बार छिनैती हुई थी कुछ महीने पहले।चाकू -वाकू भी चल गए थे "।

जीवन ने असमंजस से उसे देखा और कहा "यार ,तू मेरी मुसीबत कम कर रहा है या बढ़ा रहा है ।मतलब क्या है तेरा"।

ऑटोवाला थोड़ा ठहरकर बोला-

"मेरा कोई मतलब नहीं साहब ,मैंने आपको सिर्फ रास्ता बताया है । उस पर चलना या ना चलना आप की मर्जी। आप बाहरी हैं तो आपको आगाह कर दिया । वैसे रोज नहीं होता ये सब,एक -दो बार हो गया था। अभी दिन है आप बेफिक्र होकर जाओ,बहुत लोग उस रास्ते से जा रहे होंगे । आप खातिर जमा रखो, आप जाओ तो आपकी बस मिल जाएगी। पंद्रह-बीस मिनट में आप बस अड्डे पहुंच जाएंगे। और अगर उस रास्ते नहीं जाना है तो रेलवे फाटक खुलने का इंतजार करिये।वैसे भी मैं खड़े ऑटो का भाड़ा चार्ज नहीं करूंगा आपको ।अब सोच-समझ लीजिये साहब ।"

जीवन ने कुछ सोच -विचार किया उसके बाद उसने ऑटो वाले को बीस का नोट पकड़ाया और सूटकेस लेकर ऑटो से उतर गया।उसने पैदल ही रेलवे फाटक को पार किया और फिर ऑटो वाले के बताये रास्ते की तजवीज करने लगा। उसने देखा कई लोग मंदिर से लगायत पीछे के रास्ते से जल्दी -जल्दी जा रहे थे । उसने सोचा हो -ना-हो ये लोग भी बस अड्डे जा रहे होंगे।

जीवन भी उन लोगों के पीछे हो लिया । एक -दो मोड़ के बाद उसे नेशनल बेकरी का बड़ा सा बोर्ड नजर आया। ये बड़े इत्तफाक की बात थी कि जब उसने खुद को नेशनल बेकरी के सामने पाया तो वो अकेला ही था।

वो थोड़ा सहम गया और चौकन्ना हो गया। उसे खुद पर झल्लाहट भी हुई कि एटीएम के इस जमाने में इतनी ज्यादा नकदी लेकर चलने की बेवकूफी कर बैठा। खुद ही बड़बड़ाया -

"यूँ ही नहीं सब मुझे कहते हैं कि मैं अच्छा आदमी तो हूँ मगर अक्लमंद नहीं"।

उसने सूटकेस पर अपनी पकड़ मजबूत कर ली। और इधर -उधर देख कर टोह लेने लगा कि कोई उसकी तरफ आ तो नहीं रहा है।

"तुम यहाँ , कैसे यहाँ आ गए किसको खोज रहे हो " एक जनाना स्वर उभरा ।

जीवन ने जनाना आवाज की तरफ मुंह घुमाया तो बेकरी के सामने के एक घर से एक औरत गोद मे बच्ची और झोले में पाव लेकर निकल रही थी।

उस कच्ची बस्ती में आधे प्लास्टर किये हुए मकान में हाथ में दुधमुंही बच्ची लिये उसे मधुरा मिल गयी , वो स्तब्ध रह गया। उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि दस ग्यारह सालों बाद उसे मधुरा इस हाल में मिलेगी । मधुरा उसे देखकर हंसी वैसे ही जैसे वो निश्छल हँसा करती थी ,बिना पूरे होंठ खोले हुए । उसने इशारा किया तो जीवन चंद कदम आगे बढ़कर उसकी चौखट तक पहुंच गया।

अपनी अर्द्ध मुस्कान में मधुरा ने पूछा –

"बताया नहीं तुमने जीवन लाल,तुम यहाँ कैसे । तुम्हारे जैसा अच्छा आदमी इस मामूली शहर में क्या कर रहा है । किसको खोज रहे हो "?

"अच्छा आदमी ,तुम्हें अब भी वो सब बातें याद हैं।"

ये कहकर जीवन चुप हो गया और नजर नीची करके बोला

-"रोजी -रोटी के सिलसिले में इस शहर में आया था और बस स्टेशन जाने का शॉर्टकट रास्ता खोज रहा था। मुझे लखनऊ की डायरेक्ट बस पकड़नी है। रेलवे का फाटक बंद था । सो ऑटो छोड़ दिया। मुझे जल्दी बस पकड़नी थी।लेकिन तुम यहाँ इस हाल में । तुम्हारा विवाह तो मुंबई में हुआ था। फिर तुम्हारा घर

कहां है , पति कहाँ है । और महानगर छोड़कर इस छोटे से कस्बे में कैसे। किसी रिश्तेदारी में आयी हो क्या "।

जीवन ने जल्दी -जल्दी पूछा।

मधुरा ने हंसते हुए कहा –

"जल्दी करने की आदत गयी नहीं अब तक तुम्हारी जीवन लाल।जल्दी बस भी पकड़नी है और जल्दी -जल्दी में एक साथ कितने सवाल कर डाले तुमने। दम तो ले लो सही। मुझे यकीन तो हो जाये कि हमारी -तुम्हारी मुलाकात भी हुई है।बैठो तो सही जरा दो घड़ी, अच्छे आदमी"

अधूरी मुस्कान से कहते हुए मधुरा ने उसे कुर्सी पर बैठने का इशारा किया।

जीवन कुर्सी पर बैठ गया । उसने सूटकेस जमीन पर रख दिया और हालात को जानने -समझने की कोशिश करने लगा।

जीवन ने घड़ी की तरफ नहीं देखा और एकटक मधुरा को देखता रहा। मधुरा ने भी कभी जीवन को ,कभी जमीन को ,कभी छत को निहारा । इस दरम्यान वो बच्ची को थपकियाँ देकर सुलाने की कोशिश करती रही ।

कुछ देर यूँ ही वक्त ठहरा रहा। उन दोनों ने जब अपने -अपने अतीत को खूब याद किया। जब अतीत असहय होने लगा तो मधुरा वर्तमान में लौट आयी।

उसने जीवन की सवालिया आंखों से बचते हुए लेकिन उसी की तरफ देखते हुए कहा -

" सब बताती हूँ जीवन तुमको।मेरा घर ऊपर है । समझो ये भी है , पानी और नाबदान नीचे ही है । और मेरी शादी नहीं हुई है , ये बच्ची मेरी ही पैदा की हुई है । जिसकी औलाद थी वो भाग गया छोड़कर बिना शादी किये मुझे बिन ब्याही मां बनाकर । पंकज मुझे मुंबई ले गया था। झूठे आदमी बैठाकर नकली आफिस बनाकर उसने मुझसे कोर्ट मैरिज का नाटक किया । आठ साल तक मैं उसके साथ रही। उसका जी मुझसे जब भर गया तब उसने मुझे छोड़ दिया और मुंबई छोड़कर वापी चला गया ।वहाँ किसी और औरत के साथ उसने घर बसा लिया । उसी के घर मे रहता है और उसी की कपड़े की दुकान चलाता है। उसने मुझसे नाता

तोड़ लिया।उस वक्त मैं प्रेग्नेंट थी ।हाथ में पैसा नहीं ,ना कोई जान ना पहचान। क्या करती मैं बेबस देहाती औरत। दुनिया से लड़कर ,घर परिवार को लात मार के मैं उससे लव मैरिज करने मुंबई गयी थी । लेकिन मुंबई में ना लव रहा ना मैरिज"

ये कहते –कहते मधुरा की आंख भर आयी।

जीवन स्तब्ध होकर ये सब सुन रहा था। उसके चेहरे पर कई भाव आये -गए।

मधुरा ने दुपट्टे से अपनी आंखों के आंसूं पोंछे।

फिर धीरे से बोली -

"पंकज की तलाश में मैं प्रेग्नेंसी की हालत में वापी भी गयी।अपनी शादी और पेट के बच्चे की दुहाई दी ,लेकिन वो नहीं पसीजा अलबत्ता उसकी बीवी ने भी मुझे बहुत बेइज्जत किया। हारकर पुलिस के पास गयी। पुलिस ने जांच -पड़ताल करके बताया कि पकंज और मेरी शादी कभी हुई ही नहीं थी। नकली ऑफिस में नकली शादी की थी पंकज ने मुझसे। तो अब मैं घर से लड़कर लव मैरिज करने गयी लड़की थी जो बाद में बिना विवाह के मां बन गयी थी और जिसके साथ भागी थी उसने दूसरी शादी कर ली थी। पति ने छोड़ दिया,घर लौट नहीं सकती थी । पुलिस ने भी मदद नहीं की।हाथ में फूटी कौड़ी नहीं, जान देने और भूखों मरने की नौबत आ गयी थी। "

"तो तुम यहाँ नानपारा कैसे पहुंची" जीवन ने फंसे स्वर में पूछा ।

"पेट की बच्ची के साथ मरना मुझे पाप लगा। वहीं मुंबई में मेरी खोली के पास सलमा खाला की बेटी ब्याही थी। ये उन दिनों मुम्बई गयी थीं। इन्होंने मेरा दुखड़ा सुना तो उसी प्रेग्नेंसी की हालत में मुझे यहाँ ले आईं। यहीं मैंने इस बच्ची को जन्म दिया । इन्ही के दिये इस घर में रहती हूँ। इनकी बेकरी में काम करती हूँ.लेकिन बेकरी में ज्यादा काम रहता नहीं है । सो इधर -उधर भी छोटे -मोटे काम कर लिया करती हूं। गुजारा हो ही जाता है ,देखो कब तक जिंदा रहूं इन हालात में।अब मैं और मेरी बेटी इसी हाल में गुजरा कर रहे हैं"।

जीवन स्तब्ध ही रहा , ऊंच -नीच ,आगा-पीछा सोचता रहा।

मधुरा ने धीरे से कहा –

"जीवन लाल ,मैं तब मैं तुम्हें अच्छा आदमी कहती थी तो तुम्हें लगता था कि मैं तुम्हारा मजाक उड़ा रही हूँ और जब जीवनलाल कहती थी तब तुम्हें लगता था कि मैं तुम्हारे पुराने टाइप नाम की खिल्ली उड़ा रही हूँ। वास्तव में ऐसा नहीं था । तुम्हारे बारे में कही जाने वाली एक बात पर अब मुझे पक्का यकीन हो गया है कि दुनिया में अक्लमंद आदमी बहुत हैं और अच्छे आदमी कम "।

जीवन को ये बात सुखद तो लगी लेकिन अगले ही क्षण उसे हालात का इम्कान हुआ तो उसने संयत स्वर में कहा –

“वो सब पुरानी बातें हैं अब पुरानी बातों का क्या “।

मधुरा कुछ क्षण चुप रही फिर धीरे से बोली-

“हाँ ,तुम्हारी बात ठीक है कि अब पुरानी बातें बेमतलब है। लेकिन ज़िंदगी ने अचानक मिलवा दिया तो सोचा कि कुछ पुरानी बातें क्लियर कर दूं ताकि तुम्हारे मन में ना कोई टीस रह जाये और ना ही मेरे मन में कोई अपराध बोध “

ये कहकर मधुरा चुप हो गयी।

दोनों कुछ क्षण चुप रहे और एक दूसरे से इतर इधर -उधर देखते रहे।जब चुप्पियों की बातें खत्म हो गयीं तब दोनों बोलने के लिये मचल उठे मगर सवाल ये था कि पहले बोले कौन।

मधुरा मुँह खोलने ही वाली थी कि व्यग्र स्वर में जीवन ने कहा –

“अब बोलो भी। उन बातों का भले ही कोई मतलब ना हो। शायद तुम्हें कहकर और मुझे सुनकर शायद कुछ राहत मिल जाये”।

मधुरा में लरजते हुए कहा –

“जीवन इस बात पर तुम शायद अब भी यकीन ना करो ,लेकिन फिर भी बताए देती हूं। पंकज और तुम एक साथ मेरी ज़िंदगी में नहीं थे। तुम्हारे लिये मैंने अपनी मम्मी से और मम्मी ने पापा से ये बात चलायी थी। उस वक्त घर में बहुत बखेड़ा खड़ा हो गया था। मरने -मारने की नौबत आ गयी थी ।मेरे घर वाले लव -मैरिज के सख्त खिलाफ थे। उनके सख्त रवैए से मैं भी डर गयी थी इसीलिए उस वक्त इतना डर गयी थी कि तुम्हें पसंद करने और तुमसे प्रेम होने के बावजूद मैं भागकर तुमसे शादी करने की हिम्मत ना जुटा सकी”।

जीवन ने बेचैन आंखों से मधुरा को देखा।

मधुरा ने जीवन से आंखे चुराते हुए कहा-

“पापा का इतना डर था कि मैं उस वक्त तुम्हारे साथ कदम से कदम नहीं मिला सकी। तुम जब मुझसे निराश हो गए कि हमारा विवाह नहीं हो सकता। जब तुमने मेरी उम्मीद छोड़ दी और दिल्ली चले गए। तो मैंने भी ये मान लिया था कि हमारा विवाह नहीं हो सकता। सब कुछ भुलाकर मैं ज़िंदगी में आगे बढ़ गयी और तुम्हारे दिल्ली जाने के डेढ़ साल बाद पंकज मेरी ज़िंदगी में आया”।

जीवन ने मधुरा की तरफ बड़ी कातरता और हताशा से देखा।

मधुरा ने धीमे से कहा –

“जीवन तुमसे विवाह ना होने पाने की मुझे बहुत टीस थी और घरवालों पर बहुत गुस्सा। इसीलिये करीब डेढ़ साल बाद जब पंकज मेरी ज़िंदगी में आया तो इस बार मैं डरी नहीं। इस बार मुझे रोना नहीं था,हारना नहीं था,घरवालों के दबाव में नहीं आना था। सो बहुत आसानी से मैं पंकज की बातों में आ गयी और तुमसे छूटे प्रेम की हर तकलीफ का बदला लेने के लिये अपने घर वालों से विद्रोह करके बिना आगा -पीछा सोचे पंकज के साथ मुम्बई चली गयी। मैं तुम्हारी गुनहगार हूँ, पापिन हूँ कि ये हिम्मत मैंने तुम्हारे साथ नहीं दिखायी। शायद तुम्हारे साथ किये हुए छल की सजा मिली मुझे। यही सोच रहे हो ना तुम जीवन “

ये कहते हुए मधुरा हंसी लेकिन आँसू उसकी आँखों में तैरते हुए साफ दिख रहे थे।

मधुरा को हंसते और आँखों से ढलक आये गालों पर आंसुओं को देखकर जीवन असमंजस में पड़ गया कि वो मधुरा के हँसने में साथ दे या रोने में? चाहकर भी जीवन मुस्करा नहीं सका। उसके चेहरे पर असमंजस उभर आया था।

बातें खत्म हुईं तो उन दोनों ने फिर चुप्पियां ओढ़ लीं। जितना वो दोनों एक दूसरे से जुबानी बात करते थे उतनी ही उनकी चुप्पियां भी।

अचानक बच्ची के रोने के स्वर से उन दोनों की तंद्रा टूटी।

मधुरा लपक कर उठी ,उसने नल की टोटी खोली , बोतल के दूध में पानी मिलाया और बेटी को कंधे पर लेकर लोहे की सीढ़ियों पर उपर चढ़ गयी ,जाते -जाते उसने इशारे से कहा- “रुको, आती हूँ “।

सड़क की तरफ खुलने वाला दरवाजा खुला था । इक्का -दुक्का लोग आ- जा रहे थे । जीवन नीचे टीन की छत तले बैठा रहा,गर्मी से तप रही दोपहरी में वो अपने ग्यारह वर्ष पहले के अलगाव और बीस साल पुराने प्रेम के बारे में जोड़ -घटाव,गुणा -भाग करता रहा।

थोड़ी देर बीती तो मधुरा कच्छी और ब्रा पहनकर सीढ़ी से उतरी। उसके बदन पर नाम मात्र के कपड़े देखकर उसे लगा मधुरा नहाने जा रही है और उसके बाकी के कपड़े अंदर बाथरूम में होंगे । समय के फेर का आकलन उसने किया कि जो मधुरा दुपट्टे में मुंह छिपाकर नजरें बचाते हुए शर्माते हुए बचकर निकल जाया करती थी वो आज नाम मात्र के कपड़ों में उसके सामने बेधड़क खड़ी है।

उसने बिना दरवाजे वाली खिड़कियों की दीवार से लगे लोहे के भारी दरवाजे को बंद किया । उस दरवाजे को बंद करने का कोई खास मतलब नहीं था ,सड़क से घर के अंदर और

अंदर से सड़क का पूरा दृश्य दिखता था । लेकिन आमदरफ्त जरूर रुक जाती थी दरवाजा बंद करने से ।

मधुरा ने कोने में पड़े एक तख्त की तरफ इशारा करते हुए कहा -

"तुम भी अपने कपड़े उतार दो, आओ जल्दी जो करना है कर लो, नहीं तो बच्ची उठ जाएगी कभी भी, तुम्हे इस बात की बड़ी टीस और कसक रहा करती थी ना , कि तुम मुझे हासिल नहीं कर सके । तुम्हें हमेशा लगता था ना कि मैं तुमसे बिस्तर पर सम्बन्ध नहीं बनाती थी तो तुमसे सच्चा प्रेम नहीं करती थी । आज तुम्हारी ये मन की साध भी पूरी हो जाएगी और तुम्हे तुम्हारा पूरा –पूरा प्रेम भी हासिल हो जाएगा। काहे को मन मार के जियो तुम इसके बिना। वैसे तुम्हारी भी बात सही थी कि बिना शरीर के मिले कोई प्रेम पूरा नहीं होता ।ये बात तब मैं नहीं समझती थी लेकिन अब मेरी भी समझ में आ गयी । प्रेम - व्रेम यही है सब है ,देह से देह ना मिले तो सब बेकार ही है। आओ तुमको भी तुम्हारा हक मिलना ही चाहिये"

ये कहते हुए मधुरा तख्त पर जाकर अपने शरीर को पसार कर लेट गयी।

थोड़ी देर तक कोई हलचल ना होते देख मधुरा ने कहा -

"आओ ,क्या दिक्कत है अब । मैं राजी - खुशी तुम्हें ये मौका दे रही हैं। पहले भी मुझे तुमको अपनी देह सौंपने में कोई संकोच नहीं था, बस यही डरती थी कि कुंवारी थी तो कोई बच्चा -वच्चा ना ठहर जाए पेट में। गांव में रहने वाली कुंवारी लड़की को डॉक्टर - दवाई बहुत मुश्किल से तब मिलते थे बच्चा वगैरह हटाने में। तब यही डर था, कुंवारी तो अब भी हूँ , मेरा मतलब बिना शादी के और अब बच्चा ठहरने का क्या डर ? अब तो बच्चा पैदा हो चुका है । हां मेरी देह में अब वो बात नहीं तो तुम्हे शायद मजा ना आये उतना । लेकिन मैं जानती थी कि तुम तब भी मजे के लिये नहीं बल्कि अपने मन की साध के लिये मुझसे जिस्मानी सम्बन्ध बनाना चाहते थे । इससे पहली बात तो तुम्हारे मन की साध पूरी हो जाती कि तुमने मुझे पूरी तरह से हासिल कर लिया और दूसरी बात तुम्हारे मन का ये कांटा भी निकल जाता कि मैंने

तुम्हें अपना कुंवारा शरीर सौंप दिया तो मैं तुमसे पूरी तरह से प्यार करती हूँ"।

जीवन असमंजस से उसकी बातों को सुन रहा था ,उसकी धमनियों में रक्त का प्रवाह बढ़ चुका था। स्त्री की इस प्रकार की उपस्थिति से वो अपने शरीर में सनसनाहट महसूस कर रहा था। प्रत्यक्ष में वो सहज दिखने की भरपूर कोशिश कर रहा था लेकिन उसके हाव -भाव में असमंजस ही तारी था।

मधुरा ने उसकी मनोदशा को भांपते हुए कहा –

"ऐसा नहीं था जीवन कि आधा -अधूरा और सिर्फ बातों वाला प्यार तुमसे करती रही हूं और देह को छूने का अधिकार अपने पति के लिए बचाकर रखा था। यही सब सोचते थे ना तब तुम ।यही बात थी ना, सही कह रही हूँ ना, मैं जानती -समझती सब थी तुम्हारे मन की ।

बस कुछ वजहों से तुम्हारे मन की साध पूरी ना कर सकी थी। चलो अब अपने मन की साध पूरी कर लो, मैं अब भी वही हूँ ,बासी जरूर हो गयी हूँ, मगर बूढ़ी नहीं "

ये कहकर मधुरा हंसने लगी लेकिन अचानक हंसते -हंसते गम्भीर हो गयी और उसने आंखे बंद कर लीं।

थोड़ी देर और बीत गयी मगर उस अधखुले कमरे में किसी भी तरह की हलचल नहीं हुई। जीवन सूटकेस पर हाथ रखे बैठा रहा और अनिर्णय की स्थिति में मधुरा को अपलक देखता रहा।

थोड़ी देर तक इतंजार करने के बाद कोई हलचल ना होते देख मधुरा ने कुनमुनाते हुए आंखे खोली और फंसे हुए स्वर में बोली –

"क्या सोच रहे हो अच्छे आदमी। अब इतने अच्छे भी मत बनो कि दुनिया से ही कट जाओ। बेकार में ऊंच -नीच मत सोचो, तुम मर्द हो तुम्हें इतना क्या सोचना, आओ भी अब । मेरी भी समस्या समझो तुम।बिना कपड़ों के मैं बड़ी देर तक ना ऐसे रह सकती हूं और ना ये दरवाजा बंद रखा जा सकता है लंबे टाइम तक। अभी कोई ना कोई बुलाने आएगा, बच्ची जाग सकती है ,ऊपर अकेली है। तुम्हारा ये सब हो जाये तो मुझे और भी काम हैं ,घर में मर्द नहीं बैठा है कोई जो खिलाये, मुझे दो पैसे की रोजी तलाशने और कमाने बाहर जाना भी जाना है। मुझे कोई शौक नहीं चढ़ा है ये सब करने का। मुझे लगा शायद तुम्हारे मन की कोई साध रह गयी हो तो ? तो अब पूरी कर लो। आओ ना फिर "।

जीवन ने अपलक देखते हुए अपनी आंखें चौड़ी की और सधे स्वर में बोला

"उठो, कपड़े पहन लो, और चलो यहां से। मैं

तुमसे विवाह करूंगा "।

मधुरा हंस पड़ी और बोली -

"तुम विवाहित होवोगे,नौकरी या बिजनेस होगा। दिल्ली में रहते हो या लखनऊ में।रईस लग रहे हो तो बीवी भी अच्छी मिली होगी। बाल -बच्चे होंगे , कैसे विवाह करोगे मुझसे? अपनी दुनिया चौपट कर लोगे क्या? वैसे भी मुझे हासिल करने के लिये तुम्हे अब मुझसे विवाह करने की जरूरत नहीं, हाँ पहले शायद मुझे हासिल करने के लिये विवाह की जरूरत पड़ सकती थी ,लेकिन अब तो बिल्कुल भी नहीं। तुम बिल्कुल नहीं बदले तब भी बात - बात में विवाह करने को तैयार हो जाते थे और अब भी विवाह करने को तैयार हो। तुम भले ही अब भी अच्छे आदमी होवोगे लेकिन अब मैं अच्छी औरत नहीं रही। सेकेंड हैंड समझो मुझे तुम "

ये कहते हुए मधुरा के होठों पर मुस्कान बिखर गयी।

जीवन ने अपलक देखते हुए सर्द स्वर में कहा

"दुबारा नहीं कहूंगा, उठो कपड़े पहनो, बच्ची को लो और अगर जरूरी समझो तो कोई सामान अपने साथ ले लो, वरना कुछ भी नहीं लो। अगर तुम मुझे तब अच्छा आदमी समझती थी और अब भी अच्छा आदमी ही समझती हो तो फिर चलो मेरे साथ यहां से अभी। मैं तुमसे विवाह करूंगा । मेरा बिजनेस,नौकरी, बाल -बच्चे वगैरह की चिंता तुम मत करो। वो मेरा सिरदर्द है। मैं तुम्हें इस हाल में रहने नहीं दे सकता। फाइनल बात कह रहा हूँ और काफी सोच -समझ कर कह रहा हूँ। अब ज्यादा सवाल -जवाब मत करना। बच्ची को लो और चलो "।

जीवन के भिंचे हुये चेहरे को देखकर मधुरा सहम गयी। उसके चेहरे पर मुस्कराहट के बजाय विषाद और असमंजस फैल गया।

मधुरा अपलक जीवन को देखे जा रही थी और जीवन ने सिगरेट सुलगा ली थी और कश लेने के बाद खिड़की के बाहर देखना शुरू कर दिया था। मधुरा ने इस बात पर सोच -विचार करना शुरू कर दिया था कि वाकई जीवन लाल इतना अच्छा आदमी है या उसकी अक्लमंदी में हमेशा की तरह फिर कमी वाली कोई बात हो गयी है।

जया रावत

अभाव मे जन्मा शिशु-------
ओ! मेरे
अभाव मे जन्मे शिशु
तुम अपने पैदा होने का मातम नहीं मनाना
क्या हुआ जो मैंने तुम्हे
नागफनी की ओट मे जना है
यकीं करना---
मेरे बेटे!
फूलो की घाटी
बहुत दूँर थी
और मेरे लिये
वहां पहुंचना नामुमकिन था
मेरे नन्हे शिशु!
तुम अपने श्रवण पटुओ को भी बन्द न रखना
कयूकि तुम्हे!
नींद मे सुलाने के
लिये मैं मीठी लोरियां नहीं सुना सकी
यकीन करना
मेरे बच्चे!
मेरे पास कोई चाबी का झुनझुना भी नहीं---
-
जिसे मैं झूठ -मूठ बजा सकूँ
कोई चलती फिरती सुन्दर
गुड़िया भी नहीं--
जिससे बहला सकूँ
मेरे नन्हे मुन्ने!
मैं पूछती हूँ कि क्या
मेरी चरमराती हड्डियों का संगीत तुम्हे
सुनायी नहीं देता
क्या मेरे लहू- लुहान हुये
पावों की पदचाप
तुम्हारे लिये काफी नहीं है क्या?
मेरे बेटे!
माँ का धरम
मैं निभा पायी हू कि नहीं
मैं नहीं जानती बडा होकर जान जायेगा तू कि
मैंने तुझे कितने
संकट की घड़ी मे कैसे जना है
इतना वक्त भी उन्होंने मुझे
मुश्किल से दिया
तेरी प्रसूता माँ को उन्होंने
अपने जिस्मो तले रौंदा है
तेरे पिता की हत्या भी उनके सिर है
तुझे चुकाना है उनसे बहुत सा पिछला हिसाब

अब मेरे बेटे!
तू जल्दी से जवान हो जा
तेरी बलिषठ भुजाओं मे
मुझे दम लेना है -
इस लिये बेटे!
मैं अपनी सारी ताकत
तुझे दे रही हूँ------

असर

लघुकथा

अशोक जैन

तड़ाक--तड़ाक
रामदीन के चेहरे पर पड़े जागीर सिंह के तगड़े हाथ के थप्पड़ की खबर पूरे तीन गाँव तक फैल गयी। चौपाल पर इकट्ठी होने वाली भीड़ के स्वर बतियाने लगे:
"अरे पतरू! कुछ सुना क्या?"
" का होई गवा?"
" सरपंच ने रामदीन को लप्पड़ मार दियो सबहुँ का सामने!"
" क्यों भाई ऐसा का हुआ?"
" पता नहीं। बस ठेकेदार ने झाड़ू लेकर चौपाल पहुँचने को कहा है। चाल--"
तभी घरघराती तीन कारें चौपाल के सामने आकर रुकीं।एक कार से तमतमाते सरपंच जागीर सिंह उतरे। पीछे पीछे रामदीन भी। उसके चेहरे पर मुर्दनी छाई थी, और आँखों में आँसू ठहर गये थे।जागीर सिंह की ड्राइवरी करते हुए उसे तीन वर्ष हो गये थे। चौपाल पर भीड़ देखकर जागीर सिंह चौंके।पर चुपचाप बरगद के नीचे बनी कुर्सी पर बैठ गए। सरपंच की बस्ती वाली सभा को आयोजित करने वाला श्याम चंदर भी आ पहुँचा था।
" भाई श्याम, इधर आइये।" जागीर सिंह की कड़कदार आवाज़ उठी।
" क्या हुआ, चौधरी साहब?" उसका स्वर घबराया हुआ था।
" पहले बताना चाहिए था न! पहले से ही कुछ इंतजाम करके चलते वहाँ।"
" समझ नहीं पाया चौधरी साहब। आपके कहे अनुसार ही सब कुछ तो ठीक बैठाया गया था!" श्याम का प्रश्न भरा स्वर था।
" तो फिर वो राधे के यहाँ क्या था सब?"
"आपने ही कहा था कि किसी दलित के यहाँ खाना खायेंगे। तभी मैंने प्रैस को भी बता दिया था कि वे भी सभी मौके पर रहें!"
" लेकिन वहाँ वह लड़की कौन थी---?"
" वह शंभू ---की बेटी है चौधरी साहब। हाई स्कूल पास कर लिया है, आगे पढ़ना चाहती है। मिलना चाहती थी आपसे। रामदीन के कहने पर ही----!"
" धर्म भ्रष्ट कर दिया हमारा।" जागीर सिंह झल्ला उठे। उनके शब्द हवा में तैर गये। चौपाल पर जुटी भीड़ पर उनका असर हुआ और वह उग्र हो गई।
" जब तक सरपंच भरे गाँव के सामने रामदीन से माफी नहीं माँगते गाँव में सफाई नहीं होगी। काम बंद।"
झाड़ू लेकर लोग इकट्ठा होने लगे थे। जागीर सिंह की आँखों के सामने लाल लाल चिकत्ते तैरने लगे। तभी मुख्य सड़क से गुजरते चुनावी जत्थे के स्वर उसके कानों से टकराए:
' जीतेगा भई ,जीतेगा--------'
उन्होंने अपने दोनों हाथ कानों पर धर लिए थे।

बिटिया !

जरा संभल कर जाना,
लोग छिपाये रहते खंजर।

गाँव, नगर
अब नहीं सुरक्षित
दोनों आग उगलते,
कहीं कहीं
तेज़ाब बरसता,
नाग कहीं पर पलते,
शेष नहीं अब
गंध प्रेम की,
भावों की माटी है बंजर।

युवा वृक्ष
कांटे वाले हैं
करते हैं मनभाया,
ठूंठ हो गए
विटप पुराने
मिले न शीतल छाया,
बैरिन धूप
जलाती सपने,
कब सोचा था ऐसा मंजर।

तोड़ चुकीं दम
कई दामिनी
भरी भीड़ के आगे,
मुन्नी, गुड़िया
हुईं लापता,
परिजन हुए अभागे,
हारी पुलिस
न वे मिल पायीं,
मिला न अब तक उनका पंजर।

त्रिलोक सिंह ठकुरेला

दोहे

ज़मीं पे रह अभी तू आसमान रहने दे
धुआँ है हर तरफ़ ऊँची उड़ान रहने दे

गुलाब होठों पे महकें बजाय गमलों के
तू घर को घर बना इसको,मकान रहने दे

मिटा न अपने ही पाँवों के सब निशां आख़िर
तू अपने इल्म का कुछ तो निशान रहने दे

बहुत मासूम हैं जौहर न तू दिखा इन पर
परिन्द काँपते हैं तू कमान रहने दे

किसी की सिलवटों में क्यूँ उलझ के रहता है
तू अपनी बात कर दुनिया जहान रहने दे

अशोक वर्मा

कुछ दोहे

तुमने छुआ प्यार से, तन मन हुए गुलाब।
अधरों पर सरगोशियाँ, आँखों में है ख्वाब।।

देकर फूल गुलाब का, तुमने लिया खरीद।
जब तक ना हो दीद हम, फिरते रहें नदीद।।

मैं शबनम की बूँद हूँ, तू दिनकर की धूप।
वारूँ तेरे प्रेम पर, मैं अपना रँग-रूप।।

जब से कोई आ गया, उसके मेरे बीच।
प्रेम कमल मुरझा गया, शेष रह गयी कीच।।

मैं हूँ महक गुलाब की, तुम भँवरों का राग।
दोनों को पा खिल उठाया, ये जीवन का बाग।।

हो जाते हैं कभी-कभी, यूँ साझे जज्बात।
तेरे नयनों में पढ़ूँ, अपने दिल की बात।।

दिल को भी हम मानते, छोटी एक किताब।
जिसमें धरा सहेजकर, हमने प्रेम गुलाब।।

आशा खत्री 'लता'

लघुकथा

दोषारोपण

ओमप्रकाश क्षत्रिय 'प्रकाश'

पराली जलाने, नदी में गंदा पानी डालने और वाहन से प्रदूषण फैलाने पर जमकर आलोचना कर रहे मित्रों ने मोबाइल पर व्यस्त मित्र से कहा," मोबाइल पर ही लगा रहेगा कि हमारी तरह विश्व में फैलते प्रदूषण पर चर्चा करेगा?"

"इससे क्या होगा?" मित्र ने मोबाइल पर अंगुलियां चलाते हुए पूछा।

"हम इसका समाधान खोज पाएंगे।"

" फिर?"

" लोगों को जागरूक करके पर्यावरण प्रदूषण को कम करने में मदद करेंगे," दूसरा मित्र बोला।

" मैं वही तो कर रहा हूं," मोबाइल पर लगे मित्र ने कहा।

" मोबाइल से!" पहले मित्र ने ठहाका लगाया," यह तो मोबाइल से प्रदूषण कम कर रहा है।"

" हां," मित्र ने मोबाइल चलाते हुए कहा," हम सब मोबाइल से इतना प्रदूषण फैलाते हैं कि जितना एक राज्य पराली जलाने, नदी में गंदा पानी फैलाने, वाहन चला कर वायु प्रदूषण फैलाते हैं।"

" क्या?" अब पहला मित्र हँसा," हमें मूर्ख बनाता है।"

" नहीं।"

" फिर?"

" हम अपने मोबाइल व सोशल मीडिया से अनावश्यक फोटो, हेलो, हाय और विभिन्न पोस्ट आदि हटाकर कार्बन फुटप्रिंट कम करके वायु प्रदर्शन मिटाने में योगदान दे सकते हैं। वहीं मैं कर रहा हूं," कह कर उसने अपने दूसरे मित्रों को देखा।

वे मित्र अब भी एक-दूसरे के गिरेबान में झांक कर वायु प्रदूषण के दोषारोपण को खोजने की कोशिश कर रहे थे।

कोयले में दिनभर काम करने से
कैसा होगा आदमी काला
गन्दे होंगे कपड़े हाथ पैर सब
क्या शक किया जा सकता है
उनके नीयत पर
क्या हो भी हो सकती है काली
उसमें भी भरी होती है चमचा चापलूसी
चोरी चमारी आदि जैसे शब्द।

हो सकते हैं वो भी ग़लत
बेख़ौफ़ होकर रिकार्ड कहते हैं
आज अपने का विकास अपना नहीं
देख सकता नग्न आंखों से
खैर वे तो कई घरों से आते हैं
वहां भी चलती है एक राजनीति
बनते हैं अपने आप में साहब सब के सब।

अगर कभी इनके चमड़े का दाम लगाया जाय और कि जाय इनकी
मेहनत की निलामी
कितने खरीददार आएंगे सामने
खरीदने उस चमड़े को जो वर्षों से तप रहा
कोयले की खान में
कितना होगा इनका दाम
कभी कभी इनके परिश्रम प्रश्न चिन्ह
लगा देते हैं बड़े बड़े अनुच्छेदों पर।

-आलोक रंजन

नया सवेरा

पहचान क्या है मेरी
खुद को ढूढ़ता हूँ
वज़ूद की तलाश में
दिनभर भटकता हूँ
इस बात को सोच
मैं कहाँ अटकता हूँ
चल हिचकोले खाके
दुःख दूर झटकता हूँ
आ जाता फिर भी
दुःख फिर पटकता है
टेड़े-मेढे पकडण्डी पर
बस चलता रहता हूँ
नया सवेरा आएगा
मैं बस खुश रहता हूँ

काला बदरा

काला बदरा घिर आए
बरखा साथ जो लाए
ठंडी हवा चलाए
तन मन ठंडक से बौराए
घिर-घिर बदरा जाए
रिमझिम फुहार बरसाए
तन मन झूमें गाए
पिया की याद सताए
भीग-भीग कर मजा जो आए
गर्मी को सजा दिलाए
सुहाना मौसम बन जाए
काला बदरा जब घिर आए

लक्ष्य

हैं असफलताएं भी अच्छी
प्रशस्त करती सफलता सच्ची
बुरे दिनों की अंधीयारी रातें
हताश करती कैसे काटे
उम्मीद की किरण अपने से न फूटे
बदकिस्मत की किस्मत लुटे
बदहाली जीवन में आकर
उठने का मौका देती लाकर
जीवन में जो कष्ट उठाता
कभी नहीं प्यारे घबराता
ऐसे दुःख के बादल जब घेरे
धैर्य रखकर चलना धीरे
डगमग भवसागर में नौका फेरे
डरना नहीं बढ़ना हौसला से तीरे
आज नहीं तो कल आएगा
दुःख का बादल छट जाएगा
फर्श से अर्श पर पहुंचेगा
मेहनत का फल मिल जाएगा
बना अपने को इतना दक्ष
तू भेद दें अर्जुन सा लक्ष्य

सूर्यदीप कुशवाहा

अशोक दर्द

तुम्हारा ख्याल और ये मौसम..

मन के बगीचे में जब जब भी
मैं कविताएं लिखने जाता हूं
सारे मौसम मेरे अगल-बगल
मुझे कविताएं लिखते हुए निहारा करते हैं

तुम्हारा ख्याल आते ही
बसंत फूलों की बारात लेकर आ जाता है
तुम्हारे मिलन के वे लम्हे
ज़हन में खुशबू से भर उठते हैं
मैं खुद को तन मन से महका महका
महसूसने लगता हूं

फिर ख्याल आता बसंत चला जाता
उफ्फ गर्मी बदन तपने लगता
धुआं धुआं ख्वाब और मैं तन्हा तन्हा
भीतर ही भीतर जलने लगता

देखते ही देखते बरसात की बूंदे
ज़हन से होती हुई
आंखों की तहों से बाहर अश्क बनकर
टपकने लगतीं
आंसुओं की नमकीन बरसात में।

धुआं धुआं ख़्वाबों की चिंगारियां
आंसुओं से लिपटकर
विलीन होने लगतीं
अश्क धुआं और चिंगारियां मेरी कविता को
और धार देने लगते।

चेहरे पर उभरी रंगत मौसमों की मार से
फीकी होने लगती तो
पतझड़ अपने लाव लश्कर के साथ
बगल में खड़ा मुझे चेताता डराता
खड़ खड़ गिरते हुए पीले पत्ते मुझे बेचैन
करते।

मेरी कविता में से भी वासंती रंग
उड़ने लगता
तुम्हारी याद फिर एक बार
युगों की यात्रा के लिए मुझे
उकसाने लगती।

फिर पहाड़ों पर बर्फ गिरने लगती
मैं देखता सारे मौसम मेरी कविता को
पढ़ते
और मैं बैठा बैठा
खुद बर्फ होने लगता हूं।

जब भी मैं कविता लिखने
ज़हन के बगीचे में जाता हूं
सारे मौसम मेरे अगल बगल मुझे
कविताएं लिखते हुए निहारा करते हैं।।

रेणु रंजन

केवट का प्रभु प्रेम

काठ की नैया खेवत मैं,
भव के तू खेवनहार।
मेरे मन की तू जाने, हे जग के तारणहार।।

जन्म सफल इस केवट का, जो तूने पग धुलवाया।
यह अवसर देकर जग में, केवट का मान-बढ़ाया।।
सुर-असुर, नर-
नारी पर, करते कृपा अपरंपार।
मेरे मन की तू जाने, हे जग के तारणहार।।

देख झलक प्रभु जी तेरा, गदगद मन भाव हमारा।
मेरी नैया पर बैठे, हुआ धन्य भा ग हमारा।।
कोई माया जान न पाए, हे जग के सिरजनहार।
मेरे मन की तू जाने, हे जग के तारणहार।।

मैं तुझको पार उतारा, तू भी भव पार लगाना।
लूँ कैसे तुझसे खेवा, जब तू ही ठौर-ठिकाना।।
अपने भक्तों के तारण को, लिये कई अवतार।
मेरे मन की तू जाने, हे जग के तारणहार।।

काठ की नैया खेवत मैं,
भव के तू खेवनहार।
मेरे मन की तू जाने, हे जग के तारणहार।।

"जियो और जीने दो"

जियो और जीने दो में ही,जीवन का सम्मान है।
सेवा से जीवन की शोभा,मिलता नित यशगान है।।

वक़्त कह रहा है हमसे,
नैतिकता भी करे पुकार
जागो भाई कुछ अब तो,
करो न मानवता शर्मसार
प्रेम,नेह,करुणा से ही तो,मानव बने महान है।
सेवा से जीवन की शोभा,मिलता नित यशगान है।।

दीन-दुखी के अश्रु पौंछकर,
जो देता है सम्बल
पेट है भूखा,तो दे रोटी,
दे सर्दी में कम्बल
अंतर्मन में है करुणा तो,मानव गुण की खान है।
सेवा से जीवन की शोभा,मिलता नित यशगान है।।

धन-दौलत मत करो इकट्ठा,
कुछ नहिं पाओगे
जब आएगा तुम्हें बुलावा,
तुम पछताओगे
हमको निज कर्त्तव्य निभाकर,पा लेनी पहचान है।
सेवा से जीवन की शोभा,मिलता नित यशगान है।।

शानोशौकत नहीं काम की,
चमक-दमक में क्या रक्खा
वहीं जानता सेवा का फल,
जिसने है इसको चक्खा
देव नहीं,मानव कहलाऊँ,यही आज अरमान है।
सेवा से जीवन की शोभा,मिलता नित यशगान है।।

-प्रो(डॉ)शरद नारायण खरे